

आदरणीय नन्दकिशोर जी  
को  
सादर  
समर्पित  
जिनकी कृपा के लिए  
आजन्म ऋणी बना रहूंगा

—कोमलचन्द्र जैन

## विषय-सूची

प्राक्कथन (Foreword)	...	...	1X—X
मूमिका	...	..	XI—XV

### व्याकरण

पहला अध्याय स्वर-परिवर्तन	.	.	1—5
दूसरा अध्याय सरलव्यञ्जन-परिवर्तन	...	...	6—20
तीसरा अध्याय सयुक्तव्यञ्जन परिवर्तन	...	...	21—26
चौथा अध्याय सन्धि प्रकरण	...	...	27—34
पाँचवाँ अध्याय अभ्यस	...	...	35—37
छठवाँ अध्याय शब्दरूप	...	...	38 40
सातवाँ अध्याय धातुरूप	...	...	41—47
आठवाँ अध्याय कारक	...	...	48
नवाँ अध्याय समास	...	...	49—60
दशवाँ अध्याय धृत्प्रत्यय	...	...	61—64

न्यारहवाँ अध्याय			
तद्विषयप्रत्यय	...	...	६५—६७
चारहवाँ अध्याय			
स्त्रीप्रत्यय	...	...	६८—६९
तेरहवाँ अध्याय			
लिङ्गानुशासन	...	...	७०—७१

## संकलन

## महाराष्ट्री प्राकृत

१. गायवली	...	...	७३
२. वानरप्रोत्साहनम्	...	...	७५
३. सुमादितानि	...	...	७७
४. सञ्जनदुर्जनचर्चा	...	...	७९
५. दोलालीला	...	...	८१
६. रजकस्य औद्धत्यम्	...	...	८३

## शौरसेनी प्राकृत

प्रमुख विशेषताएँ	...	...	८४—८५
७. चक्रवर्त्परिवर्तन्ते	....	...	८७
८. अभिशापमर्षणम्	...	...	८९
९. अभिचारः	...	...	९१
१०. समराङ्गणम्	...	...	९३
११. परिहासविजल्पितम्	...	...	९५
१२. कपटप्रतिस्पर्धा	...	...	९७

## मागधी प्राकृत

प्रमुख विशेषताएँ	...	...	९८—९९
१३. प्रत्यभिज्ञानकम्	...	...	१०१
१४. घट्टकुट्यां प्रभातम्	...	...	१०३
१५. दुर्वृत्तवृत्तम्	...	...	१०५

१६.	कापटिकप्रलापः	...	...	१०७
१७.	शोणित-पिपासा	...	...	१०६
१८.	योग्यं योग्येन	...	...	१११

## अर्धमागधी प्राकृत

	प्रमुख विशेषताएँ	...	...	११२—११३
१९.	श्रेणिकराजस्य प्राणत्यागः	...	...	११५
२०.	कूणिकचेटकयोर्द्वन्द्वयोगः.	...	...	११७
२१.	कामध्वजा गणिका	...	...	११६
२२.	कर्म-विपाकः	...	...	१२१

## जैनशौरसेनी प्राकृत

	प्रमुख विशेषताएँ	...	...	१२२—१२३
२३.	द्वादश-अनुप्रेक्षा	...	...	१२५—१२७
२४.	अनित्यानुप्रेक्षा	...	...	१२६
२५.	धर्म-माहात्म्यम्	.	...	१३१

## जैनमहाभाषी प्राकृत

	प्रमुख विशेषताएँ	...	...	१३२—१३३
२६.	पतिविरहिता राजदुहिता	...	...	१३५
२७.	समाध्यासिता राजदुहिता	...	...	१३७
२८.	ब्राह्मणलक्षणम्	...	...	१३६
२९.	दुर्म प्रति मुनेरूपदेशः	...	...	१४१—१४३

## परिशिष्ट

१.	पारिभाषिक शब्द	१४५—१५०
	(अ) अंग्रेजी-हिन्दी	
	(ब) हिन्दी-अंग्रेजी	
२.	देशी शब्द	१५०

## FOREWORD

An Introduction to Prakrit is a desideratum. The sources of Indian culture are to be traced as much to Sanskrit as to Pali and Prakrit. In spite of all contributions by modern scholars, the need for going back to the original will remain for ever. From a narrower point of view, a student of Sanskrit has to face, for example in Sanskrit dramas, a lot of Prakrit. Through Sanskrit rendering of the same, he cannot enjoy the flavour of original Prakrit. He has to have access to the original. In due recognition of this fact, the Banaras Hindu University has assigned a place to the study of Pali and Prakrit in the Post Graduate curriculum for Sanskrit.

But here the University is confronted by the paucity of suitable reading material. Woolner's Introduction to Prakrit has long disappeared from the market. The University has therefore to fall back upon the *Karpura mañjarī* by Raja śekhara. But it gives only a partial picture—Śaurasenī Prakrit. How to provide for a full picture that does adequate justice to all the major streams—Maharāṣṭrī, Śaurasenī, Magadhī, Ardhamāgadhī, Jaina śaurasenī and Jaina maharāṣṭrī?

The Department of Sanskrit and Pali had to do something about it. I therefore requested Śrī K. C. Jain, Prakṛt-Ācārya, Jaina darśana Ācārya, M. A. of the Department to set his hand to it and I am delighted that he has not spared himself to rise up to the occasion. The result is the *Prākṛta pratīka* now being presented before the Public.

The motive behind the work is to introduce the Post Graduate students of Sanskrit to Prakrit language. An attempt has been made to strike a balance between the immediate need of such students and provision for a handy

apparatus for entering the realms of Prakrit literature which in magnitude is only next to Sanskrit. In consonance with the original motive, Prakrit is sought to be explained in the light of Sanskrit—a stand which Prakrit grammarians like Vararuchi have taken.

The work in its modest form is broadly divided into elementary grammar and collections. Regarding grammar Mahārāstrī Prakrit, as in Vararuchi, is taken as the model. Individual variations in other Prakrits have been noted before the specimens of every other Prakrit. The rules of grammar have been authenticated by relevant rules from traditional grammarians, together with their meanings in Hindi at the footnote. Woolner has been improved upon by incorporating additional topics, and latest publications on Prakrit have been taken notice of as far as the limited space permits. The approach has therefore been grammatical and to some extent philological.

Collections are intended for providing specimens of different types of Prakrit as they grew through the ages. They are literary rather than technical. They should therefore read pleasant. Every piece again is attended with its Sanskrit rendering so that the correspondence between the two may be thoroughly established.

I shall be very glad indeed if this venture satisfies a long felt want. I wish the work all success.

Banaras Hindu University

Nov 12, 1964

S BHATTACHARYA

## भूमिका

संस्कृत-साहित्य भारत की अमूल्य सम्पदा रही है। प्राचीन काल से आज तक काशी, नगद्वीप, मथुरा, काश्मीर आदि नगरों की प्रतिष्ठा केवल संस्कृत साहित्य के अध्ययन और अध्यापन के लिए बनी हुई है। सच तो यह है कि भारत का गौरव इन्हीं नगरों में विकसित होकर पल्लवित होता रहा है।

विदेशी शासनकाल में निःसन्देह इस दिशा में कुछ अवनति हुई थी, किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् पुनः इस दिशा में विशेष ध्यान दिया गया। इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण वाराणसेय संस्कृत विश्व-विद्यालय है। सन्तोष का विषय है कि लोगों की रुचि संस्कृत-साहित्य की ओर बढ़ रही है।

यहां यह स्मरण रखना होगा कि संस्कृत साहित्य के ज्ञान के लिए पालि एवं प्राकृत का मौलिक ज्ञान होना आवश्यक है, क्योंकि संस्कृत के साथ इन भाषाओं का चोली दामन सा सम्बन्ध है। यही कारण है कि भारत के अधिकांश विश्वविद्यालयों के, जहां संस्कृत की एम० ए० कक्षाएँ हैं, पाठ्यक्रमों में पालि प्राकृत को आंशिक रूप से स्थान दिया गया है। वास्तविकता यह है कि पालि प्राकृत के मौलिक ज्ञान के बिना संस्कृत साहित्य का आनन्द एवं ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

सन् १९६३ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के एम० ए० (संस्कृत) पाठ्यक्रम में निर्धारित प्राकृत का अध्यापन भार मुझे सौंपा गया। निर्धारित पाठ्यक्रम में 'कर्पूरमञ्जरी' एवं प्राकृत व्याकरण (प्रारम्भिक ज्ञान) था। कर्पूरमञ्जरी पढ़ाते समय मैंने यह अनुभव किया कि छात्रों को प्राकृत के व्याकरण को जान लेने के प्रति उत्सुकता है। अधिकांश छात्रों ने मुझसे इस सम्बन्ध में सुझाव मागे कि इस विषय के अध्ययन के लिए कौन सी पुस्तक उपयोगी होगी? मैंने कुछ पुस्तकों के नाम बताये। किन्तु प्रायः सभी छात्रों ने यह शिकायत की

कि ये पुस्तकें हमारे लिए अनुपयोगी हैं। हमें तो विभिन्न प्राकृतों का मौलिक ज्ञान प्राप्त करना है।

अन्त में मैंने 'ए० सी० बुल्नर कृत 'इण्ट्रोडक्शन टु प्राकृत' नामक पुस्तक पढ़ने को दी जिसके प्रति छात्रों ने विशेष आप्रहृद दिखाया। खेद है कि उक्त पुस्तक अब अप्राप्य है। दूसरी ओर कर्पूरमञ्जरी जो मुख्यरूप से पाठ्य पुस्तक है को पढ़ाते समय यह अनुभव किया कि शृंगार प्रधान पुस्तक होने के कारण छात्र छात्राएँ उसके प्रति ठीक ध्यान नहीं देते थे। इसके अतिरिक्त उक्त पुस्तक केवल शौरसेनी प्राकृत (जिसके पद्यांश को स्टेनफोर्नो ने बाद में महाराष्ट्री प्राकृत में परिवर्तित कर दिया है) में ही लिखी गयी है जब कि संस्कृत छात्रों से अन्य प्राकृतों के ज्ञान की भी अपेक्षा की जाती है।

ये सब ऐसी समस्याएँ थीं जिसके कारण मैं क्रिचित् चिन्तित हो उठा। इसकी चर्चा मैंने अपने विभागाध्यक्ष श्रद्धेय डा० सिद्धेश्वर भट्टाचार्य से की तो उन्होंने सुझाव दिया कि क्यों न मैं 'इण्ट्रोडक्शन टु प्राकृत' के आधार पर एक पुस्तक तैयार कर हूँ जिससे इन समस्याओं का हल निकल आये। प्रस्तुत पुस्तक उक्त सुझाव का ही परिणाम है।

प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में हमें दो मत दिखाई पड़ते हैं। प्रथम मत के अनुसार 'प्रकृत्या स्वभावेन सिद्ध प्राकृतम्' या 'प्रकृतीना जनसाधारणमिदं प्राकृतम्' अर्थात् स्वभावात् सिद्ध या जनसाधारण की भाषा को प्राकृत कहते हैं। द्वितीय मत के अनुसार 'प्रकृति संस्कृत तत्र भय तत आगत या प्राकृतम्' अर्थात् संस्कृत जिस भाषा की प्रकृति हो या जो भाषा संस्कृत से उत्पन्न हुई हो उसे प्राकृत कहते हैं। प्रथम व्युत्पत्ति ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है एवं द्वितीय प्राकृत भाषा का ज्ञान प्राप्त करने की दृष्टि से। प्रस्तुत पुस्तक संस्कृत छात्रों के लिए विशेष रूप से लिखा गया है। अतः इसमें द्वितीय व्युत्पत्ति को महत्त्व दिया गया है। इसमें संस्कृत पदों को प्रकृति रूप में पहले लिखा गया है, तत्पश्चात् उससे बनने वाले प्राकृत पदों को दिया गया है।

प्राकृत वैयाकरणों में भी दो सम्प्रदाय थे। प्रथम सम्प्रदाय के प्रमुख हेमचन्द्र थे तथा द्वितीय के धरमचि। प्रस्तुत पुस्तक में दोनों सम्प्रदायों का समन्वयात्मक ढंग प्रस्तुत किया गया है।



प्रस्तुत ग्रन्थ दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में व्याकरण तथा द्वितीय भाग में प्रमुख प्राकृतों के विशिष्ट गद्यपद्यांशों का संकलन है।

प्रथम भाग में व्याकरण-सम्बन्धी मौलिक नियमों को सरल एवं आधुनिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। टिप्पणी में प्राचीन-परम्परा में रुचि रखने वाले छात्रों के लिए हेमचन्द्रकृत-प्राकृतव्याकरण एवं वररुचिकृत-प्राकृत-प्रकाश से सूत्र ( अर्थ सहित ) दिये गये हैं। कहीं कहीं उपयोगी शब्दों को प्राथमिकता देने के लिए सूत्रोक्त शब्दों के क्रम का मूल में परिवर्तन करना पडा है। जहां नहीं हेमचन्द्र कृत संस्कृत-व्याकरण से पाणिनिकृत संस्कृत-व्याकरण में भिन्नता है, वहां पाणिनि सम्मत तथ्य को कोष्ठक में दिया है। जैसे प्रथमा विभक्ति एरुवचन संस्कृत प्रत्यय—सि ( सु ) आदि।

द्वितीय भाग में ६ प्रमुख प्राकृतों के विशिष्ट अंशों का संकलन किया गया है। गद्यपद्यांशों को ऐतिहासिक दृष्टि से क्रमबद्ध किया गया है। इससे छात्र विभिन्न प्राकृतों की विभिन्नकालीन धाराओं को सहज ही समझ सकेंगे। प्रत्येक प्राकृत के संकलन के पूर्व उसकी विशिष्टताएँ भी दी गयी हैं। तुलनात्मक रुचि की वृद्धि के लिए साथ में संस्कृत छाया भी दी गयी है। जहां नहीं मुझे व्याकरण से असम्मत पाठ मिले वहां व्याकरणसम्मत पाठों को कोष्ठकों की सहायता से दिखाया है। संकलन करते समय मैंने इस बात में पूरी सतर्कता रखी है कि संकलित गद्य-पद्यांश सरल, आधुनिक एवं पठन-पाठन के योग्य हों।

इस बात का उल्लेख कर चुका हूँ कि प्रस्तुत पुस्तक 'ए० सी० बुल्नर' रचित 'इण्ट्रोडक्शन टु प्राकृत' के आधार पर लिखी गयी है, किन्तु इसकी कुछ निजी विशेषताएँ भी हैं। 'इण्ट्रोडक्शन टु प्राकृत' के कुछ तथ्यों को मैंने नहीं लिया है। उदाहरण के लिए अपभ्रंश भाषा तथा प्राकृत साहित्य का विवेचन प्रस्तुत ग्रन्थ में नहीं है क्योंकि यह पुस्तक संस्कृत विद्यार्थियों को प्राकृत सिखाने की दृष्टि से लिखी गयी है। यहां एक बात और स्पष्ट कर दूँ कि प्रस्तुत पुस्तक में पालि भाषा को स्थान नहीं दिया गया है, क्योंकि इस विषय पर अलग से एक पुस्तक तैयार की जा रही है।

दूसरी ओर इस पुस्तक में लिग परिवर्तन, कारक, अव्यय, समास, तद्धितप्रत्यय, कृतप्रत्यय एवं स्त्रीप्रत्यय नामक अध्याय अधिक है। अध्यायों में विषयस्तु की प्रामाणिकता को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक ग्रन्थों से यथास्थान उद्धरण भी दिये गये हैं। साथ ही विभिन्न स्थलों पर भाषाविज्ञान सम्बन्धी आवश्यक नियमों की प्रामाणिक चर्चा की गयी है। प्रत्येक गद्य पद्यांशों की संस्कृतच्छाया भी दी गयी है।

अन्त में एक बात की चर्चा पुनः कर देना आवश्यक समझता हूँ कि प्रस्तुत पुस्तक तैयार करने का उद्देश्य प्राकृत भाषा का व्यापक ज्ञान कराना नहीं है अपितु संस्कृत छात्रों के लिए प्राकृत का मौलिक ज्ञान कराना है। इस विषय पर व्यापक रूप से अध्ययन करने के लिए अन्य ग्रन्थों का अध्ययन करना आवश्यक होगा। मेरी यह कृति यदि संस्कृत के छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

प्रस्तुत पुस्तक तैयार करने में मुझे जिन आदरणीय गुरुजनों के सुभाव तथा आशीर्वाद प्राप्त हुए हैं, उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। सर्वप्रथम मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत एवं पालि विभाग के अध्यक्ष श्रद्धेय डा० सिद्धेश्वर भट्टाचार्य का विशेष रूप से आभारी हूँ जिनके सुझाव से ही मुझे यह पुस्तक लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई। उन्हीं के निर्देशन से यह पुस्तक पूर्ण रूप से तैयार हुई है। जयलपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग के अध्यक्ष श्रद्धेय डा० हीरालाल जैन का भी आभारी हूँ जिन्होंने मेरे हस्तलेखों को देखकर समय समय पर निर्देश दिये। भण्डार ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पूना के प्रधान सम्पादक आदरणीय डाक्टर पी० एल० वैद्य जी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ क्योंकि उन्होंने पाण्डुलिपि को आधुनिक रूप में तैयार करने में परामर्श तथा सन्दर्भ पुस्तकें देकर मेरे कार्य को सरल बनाया है। धीयुत भाई विश्वनाथ मुखर्जी की समय समय पर सहायता प्राप्त की अतः उनके प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। अगर इन विद्वानों का अमूल्य सहयोग प्राप्त न हुआ होता तो शायद मैं इसे इतना उपयोगी न बना पाता।

मैं अपने विद्वान-पाठकों तथा छात्रों से एक बात और कहना आवश्यक समझता हूँ कि अगर वे इस पुस्तक में और कोई कमी या त्रुटि पाएँ तो लेखक को कृपया सूचित कर दें ताकि अगले संस्करण में उन सबकी पूर्ति कर, उन समस्त कमियों को दूर किया जा सके ।

भारती महाविद्यालय,  
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,  
वाराणसी ।  
नवम्बर १९६४

—कोमलचन्द्र जैन

## शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	१२	शेषस्तु	शेषस्तु
४५	=	माल <sup>१</sup>	माल <sup>१</sup>
५४	११	हस्	हस
५९	२१	इव	व्य
६०	९	इव	व्य
७३	२६	ऋद्धि	रिद्धि
७४	६	भणन्तो	भणन्तो
८४	२३	द्रष्टव्य	द्रष्टव्य
९६	२	लोठणि	लोठनि
११३	१२	कृत्वा	कृत्वा
११३	१३	गत्वा	गत्वा
११५	२	श्रेणीकराजस्य	श्रेणिकराजस्य
१२३	१४	ज्ञात्वा कृत्वा	ज्ञात्वा कृत्वा
१२७	२१	वम्हचेर	वम्हचेर
१४१	२	रूपदेश <sup>१</sup>	रूपदेश <sup>१</sup>

## सङ्केत-विवरण

क्रम०	=	क्रमदीश्वरकृत प्राकृतव्याकरण
पि० प्रा०	=	प्राकृत भाषाओं का व्याकरण ( मूलचेरमरुपिशाल )
मार्च०	=	मार्चण्डेय कृत प्राकृतसर्वस्य
घर०	=	घररचिकृत प्राकृतप्रकाश
द्दे०	=	द्देमचन्द्रकृत प्राकृतव्याकरण

## पहला अध्याय

### स्वर-परिवर्तन

- अ > आ, समृद्धि = सामिद्धी, समिद्धी ; प्रकटम् = पाअडं, पअडं ।  
इ, व्यजनम् = विअणं ; मृदङ्गः = मुइंगो ।<sup>२</sup>  
ई, हर = हीरो, हरो ।<sup>३</sup>  
उ, प्रथमम् = पुडुमं, पडुमं, पुढमं, पढमं ।<sup>४</sup>  
ऊ, अभिज्ञः = अहिण्णु ; आगमज्ञः = आगमण्णु ।<sup>५</sup>

१. आ समृद्ध्यादिषु वा ॥१॥२॥वर०॥  
समृद्ध आदि शब्दों के आदि अ को विकल्प से आ हो जाता है ।  
(उपसर्गों का पहला स्वर विकल्प से दीर्घ हो जाता है ।— देखिए पि प्रा. पारा नं. ७७)
२. इदीपत्यक्वस्वप्नवेतसव्यजनमृदङ्गाङ्गारेषु ॥१॥३॥वर०॥  
सूत्रपठित शब्दों के आदि अकार को इकार हो जाता है ।  
(जिस शब्द में प्रथम अक्षर की ध्वनि पर चल पड़ता हो वहाँ प्रथम या द्वितीय अक्षर में रिपत अ को इ ही जाता है ।— देखिए पि. प्रा. नं. १०१)
३. ईहरे वा ॥८॥१॥५॥हे०॥  
हर शब्द के आदि अ को विकल्प से ई हो जाता है ।
४. प्रथमे प-योर्वा ॥८॥१॥५॥हे०॥  
प्रथम शब्द के प एवं थ चर्तों अ को विकल्प से उ होता है ।  
(प्राय. ओष्ठवर्ण के बाद आने वाले अ को विकल्प से उ होता है ।— तुलना कीजिए पि प्रा. पारा नं १०४)
५. जो णरवेभिजादी ॥८॥१॥५॥हे०॥  
अभिज्ञ आदि शब्दों के अ को ण होने पर अ स्थान अ को उ हो जाता है ।  
(प्रथमाभिभक्ति के एतद्वचन में उः षो ऊ हो जाता है ।)

ए, शय्या = सेज्जा, पर्यन्तम् = पेरन्त ।<sup>१</sup>

ओ, पद्मम् = पोम्म, पउम, नमस्कार = णमोक्कारो ।<sup>२</sup>

अइ, जलमयम् = जलमइअ, जलमअ ।<sup>३</sup>

आइ, न पुन = ण उणाइ, ण उणो, ण उण ।<sup>४</sup>

लुक, अरण्यम् = रण्ण ।<sup>५</sup>

आ > अ, यथा = जह, जहा, <sup>६</sup> आस्यम् = अस्स ।<sup>७</sup>

१. ए शय्यादिषु ॥१।५।वर०॥

शय्या आदि शब्दों के आदि अकार को एकार हो जाता है ।

शय्या आदि शब्द—

शय्यात्रयोदशाक्षरं पर्यन्तोत्तरबल्लय ।

सौन्दर्यं चेति शय्यादिगण शेषस्तु पूर्ववत् ॥

२. (अ) ओत्पद्मे ॥८।१।६।हे०॥

पद्म शब्द के आदि अ को ओ होता है ।

(ब) नमस्कार परसरे त्रितोयस्य ॥८।१।६।हे०॥

सूत्रपठित शब्दों के द्वितीय अ को ओ हो जाता है ।

(ओष्ठवर्ण के अनन्तर आन वाले सपुक्त व्यन्जन के पूर्व के अ को उच्चारण सौकर्य के लिए ओ होता है । )

३ मयट्यइर्वा ॥८।१।५०।हे०॥

संस्कृत मय प्रत्यय के म में स्थान अकार को विकल्प से अइ होता है ।

४ नात्पुनर्यादाइ वा ॥८।१।६५।हे०॥

न के बाद आने वाले पुनर् शब्द के अ को विकल्प से आइ होना है ।

५ सोषोऽरण्ये ॥१।४।वर०॥

अरण्य शब्द के आदि अ वा सोष होता है ।

६ अदातो यमादिषु वा ॥८।१।५३।वर०॥

यमा आदि शब्दों के आ को विकल्प से अ होना है ।

(त्रिभ्यानिशेषण के अन्तिम अस्वरित आ को प्राय अ हो जाता है ।—देखिए पि प्रा. पारा नं ११२)

७. ह्रस्व शयोने ॥८।१।८५।हे०॥

सपुत्रभ्यन्त के पूर्ववर्ती दीर्घ स्वर को ह्रस्व हो जाता है ।

स्वर-परिवर्तन

इ. सदा = सइ, सआ ; यदा = जइ, जआ ।<sup>१</sup>

ई, स्त्यानम् = थीणं, रलयाटः = रल्लीटो ।<sup>२</sup>

उ, सासना = सुण्हा, आर्द्रम् = उर्द, ओल्लं ।<sup>३</sup>

ऊ, आसारः = ऊसारो, आसारो ।<sup>४</sup>

ए, द्वारम् = देरं, दुआरं ; माहम् = गेज्मं ।<sup>५</sup>

ओ, आलो = ओली ।<sup>६</sup>

इ > अ, पथि = पदो,<sup>७</sup> इति विरुसितकुमुमसरः = इअ विअसिअ-कुमुम-सरो ।<sup>८</sup>

उ, इक्षु = उच्छू, पृश्चिरुः = विच्छुओ ।<sup>९</sup>

- ई, सिंहः = सीहो, जिह्वा = जीहा ।<sup>१</sup>  
 ए, पिण्डम् = पेण्डं, पिण्डं ; सिन्दूरम् = सेन्दूरं, सिंदूरं ।<sup>२</sup>  
 ओ, द्विधाकृतम् = दोहाइअं, दुहाइअं ।<sup>३</sup>  
 ई > अ, हरीतकी = हरडई ।<sup>४</sup>  
 आ, काश्मीराः = कम्हारा ।<sup>५</sup>  
 इ, पानीयम् = पाणिअं, अलीरुम् = अलिअं ।<sup>६</sup>  
 उ, जीर्णम् = जुण्णं, जिण्णं ।<sup>७</sup>  
 ऊ, हीनः = हूणो, हीणो ; विहीनः = विहूणो, विहीणो ।<sup>८</sup>  
 ए, पीयूषम् = पैऊसं, कीटशः = केरिसो, ईटशः = एरिसो ।<sup>९</sup>

१. ईत्सिहजिह्वयोश्च ॥१११०॥वर०॥  
सिंह तथा जिह्वा शब्द के आदि इ को ई होता है ।
२. इत् एत्पिण्डसमेषु ॥११२॥वर०॥  
पिण्ड आदि शब्दों के इकार को एकार होता है ।  
(संयुक्त व्यञ्जन के पूर्व के इकार को एकार होता है -देखिए पि प्रा.  
पारा नं. ११८)
३. ओ च द्विधाकृतः ॥११६॥वर०॥  
कृष् पातु के साथ द्विधा शब्द के इकार को ओकार होता है ।  
( चकारदुत्त्वं च, सूत्रवृत्ति । )
४. हरीतक्यामीतोत् ॥८११२९॥हे०॥  
हरीतकी शब्द में आदि ई को अ होता है ।
५. आत्कश्मीरे ॥१११००॥हे०॥  
कश्मीर शब्द के ई को आ होता है ।
६. इदोतः पानीयादिषु ॥११८॥वर०॥  
पानीय आदि शब्दों के आदि ईकार को इकार हो जाता है ।
७. उज्जीर्णे ॥८११२०२॥हे०॥  
जीर्ण शब्द के ईकार को उकार से उकार होता है ।
८. ऊर्हीनि-विहीने वा ॥८११२०३॥हे०॥  
हीन और विहीन शब्द के ईकार को उकार से ऊकार होता है ।
९. एत्पीयूषापोट विभीतक-कीटरोहो ॥८११२०६॥हे०॥  
पीयूष आदि शब्दों के ई को ए होता है ।



- उ > अ, मुकुलः = मउलो, गुरुऋम् = गुरुअं ।  
 इ, पुरुषः = पुरिसो, भ्रुकुटिः = भिउठी ।  
 ई, क्षुतम् = क्षीअं ।<sup>३</sup>  
 ऊ, दुर्भगः = दूहवो, दुहओ ।<sup>४</sup>  
 ओ, पुष्करम् = पोक्खरो, तुण्डम् = तोण्डं ।<sup>५</sup>
- ऊ > अ, दुकूलम् = दुअलं, दुऊलं ।<sup>६</sup>  
 इ, नूपुरम् = निउरं, नेउरं, नूउरं ।<sup>७</sup>  
 ई, उद्व्यूढम् = उव्वीढ, उव्वूढं ।<sup>८</sup>

१. उतो मुकुलादिष्वत् ॥८११०७॥हे०॥  
 मुकुल आदि शब्दों के आदि उकार को अकार होता है ।  
 (एक शब्द में दो उकार होने पर प्रथम उकार को अकार होता है ।—  
 देखिए पि. प्रा. पारा नं. १२२)
२. इत्पुष्ये रो' ॥११२३॥वर०॥  
 पुष्य शब्द के रु में स्थित उ को इ होता है ।  
 इभ्रुकुटी ॥८१११२०॥हे०॥  
 भ्रुकुटि शब्द के आदि उ को इ होता है ।
३. ईः क्षुते ॥८१११२१॥हे०॥  
 क्षुत शब्द के आदि उकार को ईकार होता है ।
४. लुंकि दुरो वा ॥८११११६॥हे०॥  
 दुर् उपसर्ग के रेफ का लोप होने पर उ को विकल्प से ऊ होता है ।
५. उत ओत्तुण्डरूपेषु ॥११२०॥वर०॥  
 तुण्ड आदि शब्दों के उकार को ओकार होता है ।  
 (प्रायः सयुक्त व्यञ्जन के पूर्व के उ को ओ होता है ।—देखिए पि. प्रा.  
 पारा नं. १२४)
६. अद्दुकूले वा लस्य द्वित्वम् ॥११२५॥वर०॥  
 दुकूल शब्द के ऊ को विकल्प से अ होता है तथा ल को द्वित्व होता है ।
७. इदेती नूपुरे वा ॥८१११२३॥हे०॥  
 नूपुर शब्द के ऊ को विकल्प से इ तथा ए होते हैं ।
८. ईर्षोऽप्यूडे ॥८१११२०॥हे०॥  
 उद्व्यूढ शब्द के ऊ को विकल्प से ई होता है ।

उ, हनूमान् = हनुमन्तो, मधूकम् = महुअं, महूअं ।<sup>१</sup>

ए, नूपुरम् = नेउरं, नूउरं ।

ओ, कर्पूरम् = कोउपरं, ताम्बूलम् = तंबोल ।<sup>२</sup>

ऋ > अ, तृणम् = तणं, मृतम् = मअं, कृतम् = कअं ।<sup>३</sup>

इ, ऋपिः = इसी, मृगांरुः = मिअंको ।<sup>४</sup>

उ, ऋतु = उऊ, परभृतः = परहुओ ।<sup>५</sup>

ऊ, मृपा = मूसा, मोसा, मुसा ।<sup>६</sup>

ए, वृन्तम् = वेण्टं, विण्टं, वोण्टं ।<sup>७</sup>

ओ, मृपा = मोसा, मुसा ।

१ ( अ ) उभ्रूहनुमःकण्डूय-वानूले ॥८१११२१॥हे०॥

सूत्रोक्त शब्दों के ऊ को उ होता है ।

( ब ) मधूके वा ॥८१११२२॥हे०॥

मधूक शब्द के ऊ को विकल्प से उ होता है ।

२ ओत्कूष्माण्डो-तूणोर कूर्पर-स्यूल-नाम्बूल-गुहूची-मूल्ये ॥८१११२४॥हे०॥

सूत्रोक्त शब्दों के ऊ को ओ होता है ।

( उ की तरह ऊ भी सयुक्त व्यंजन से पूर्व आने पर ओ ही जाता है ।—  
देखिए पि प्रा पारा नं. १२६ )

३ ऋतोत् ॥८१११२६॥हे०॥

आदि ऋकार को अ होता है ।

४ इट्प्यादिपु ॥११२८॥वर०॥

ऋपि आदि शब्दों के आदि ऋकार को इकार होता है ।

५ उट्त्वादिपु ॥११२९॥वर०॥

ऋतु आदि शब्दों के ऋकार को उकार होता है ।

( औष्ठ्य वर्णों के बाद ऋ या ऋ के बाद उ आने पर ऋकार को उकार  
ही जाता है ।—सुलना कीजिए पि. प्रा. पारा नं. ९१ )

६ उदूदोन्मृपि ॥८१११३६॥हे०॥

मृपा शब्द के ऋ को उ, ऊ तथा ओ होता है ।

७ इदेदोदवृन्ते ॥८१११३६॥हे०॥

वृन्त शब्द के ऋ को इ, ए तथा ओ होता है ।

ए, शैल = सेलो, शैत्यम् = सेचं ।

ओ > अ, अन्योन्यम् = अन्नन्नं, अन्नुन्नं ; प्रकोष्ठ = पवट्टो, परट्टो ।

ऊ, सोच्छ्वासो = सूसासो ।<sup>३</sup>

अउ, गोक = गउओ, गौः = गऊ ।<sup>४</sup>

आअ, गो = गाअ गाओ ( पुं० ) गाई ( स्त्री० ) ।

आँ > अउ, पौरः = पउरो, कौरव = कउरवो ।<sup>५</sup>

आ, गौरवम् = गारवं, गउरवं ।<sup>६</sup>

उ, सौन्दर्यम् = सुन्देरं, सुन्दरिअ ; शौण्डः = सुण्डो ।<sup>७</sup>

ओ, कौमुदी = कोमुई, यौवनम् = जोवनं ।<sup>८</sup>

आव, नौः = नावा ।<sup>९</sup>

१. ऐत एत् ॥८१३५॥वर०॥

आदि ऐकार का एकार होना है ।

२. ओतोद्धान्योन्य-प्रकोष्ठातोद्य-शिरोवेदना-मनोहर सरोरुहे ऋतोश्च वः ॥८११-  
११५६॥हे०॥

सूत्रोक्त शब्दों के ओ को विबल्लन से अ तथा ययासम्भव ककार तथा तकार को व आदेश होता है ।

३. ऊसोच्छ्वासो ॥८१११५६॥हे०॥

सोच्छ्वास शब्द के ओ को ऊ होता है ।

४. गव्यउ आअ. ॥८१११५८॥हे०॥

गो शब्द के ओ को अउ आअ आदेश होते हैं ।

५. अउ पौरादी ष ॥८१११६२॥हे०॥

पौरादि तथा कौतेयक शब्द के ओ को अउ होता है ।

६. आष गौरवे ॥८१११६३॥

गौरव शब्द के ओ को आ तथा अउ होता है ।

७. उ(सौन्दर्यादी) । ॥८१११६८॥हे०॥

सौन्दर्य आदि शब्दों के ओ को उ होता है ।

८. औन ओत् ॥८१११५९॥हे०॥

आदि औकार को ओकार हो जाता है ।

९. नाप्यावः ॥८१११६४॥हे०॥

नौ शब्द के ओ को आव आदेश होता है ।

य, तीर्थकर = तित्थयरो शकटम् - सयट् ।<sup>१</sup>

व, प्रकोष्ठ = पवट्ठो, पउट्ठो ।

ह, निरुप = निहसो, स्फटिक = फलिहो ।<sup>२</sup>

ख > क, शृङ्खलम् = सकल शृङ्खला = सकला ।<sup>३</sup>

ह, मुखम् = मुह मेखला = मेहला, शाखा = साहा ।<sup>४</sup>

ग > लोप, अनुराग = अणुराओ, नगरम् = एअर ।

क, नगरम् = नकरं, गगनम् = गरुन ( पैशाची ) ।<sup>५</sup>

१. अवर्णो यश्नुति ॥८१११८०॥हे ॥

अवर्ण से पर क, ग आदि के लोप होने से यदि अ या आ शेष रहे तो यश्नुति होती है ।

(जिन व्यञ्जनों को विच्छुति हो जाती है उनके स्थान पर लघुप्रयत्नतर यकार अर्थात् हल्की ध्वनि से उच्चारित य बोला जाता है । हेमचन्द्र के अनुसार यह केवल अ और आ के बीच में आता है । मार्कण्डेय के अनुसार यश्नुति तब होती है जब एक स्वर अ या इ हो ।— देखिए पि प्रा पारा न १७९)

२. निकप-स्फटिक चिकुरे ह ॥८१११८६॥हे ॥

सूत्रोक्त शब्दों के क को ह होता है ।

३. शृङ्खले ख क ॥ १११ ० हे ॥

शृङ्खल शब्द के ख को क होता है ।

(कुछ हकारयुक्त वर्णों से हकार समाप्त हो जाता है । तुलना कीजिए— पि प्रा पारा न २०६)

४. ख घ ष भ भाम् ॥८१११८७॥हे ॥

स्वर से परे असंयुक्त अनादि ख घ ष भ (हकारयुक्त वर्णों को) को प्राय ह होता है ।

(शब्द के आरम्भ में होने पर इनका दो चार स्थान पर ही ह रूप होता है ।— देखिए पि प्रा पारा नं. १८८)

५. पर्वाणां सुतीयचतुर्थपौरुषोरनाद्योराद्यौ ॥१०१३॥वर०॥

पैशाची प्राकृत में षां के अनादि असंयुक्त सुतीय एय चतुर्थ व्यंजनों को क्रमशः प्रथम और द्वितीय हो जाते हैं ।

(तुलना कीजिए— पि प्रा पारा न १०३)

म, पुंनागानि = पुंनामाई, भागिनी = भामिणी ।<sup>१</sup>

ल, छागः = छालो, छागी = छाली ।<sup>२</sup>

व, दुर्भगः = दूहवो, सुभग = सूहवो ।<sup>३</sup>

घ > स, मेघ = मेसो, व्यात्र = वक्रो ( पैशाची ) ।

ह, मेघ = मेहो, जघनम् = जहणं ।

च > लोप, नाराच = नाराओ, प्रचुरम् = पउरं ।

ज, पिशाची = पिसाजी ।

ल, पिशाचः = पिसछो, पिसाओ ।<sup>४</sup>

स, सचितः = ससिओ, खइओ ।

छ (अपरिवर्तित), छेदः = छेओ ।<sup>५</sup>

ज > लोप, रजतम् = रअर्द, गजः = गओ ।

च, राजा = राचा ( पै० ), जर्जरम् = चच्चरं ( चू० पै० ) ।

ज्ज, ऋजुः = उजू ।<sup>६</sup>

१. पुंनाग-भागिन्योर्गो मः ॥८।१।१००।हे०॥

सूत्रोक्त शब्दों के ग को म होता है ।

२. छागे ल. ॥८।१।१०१।हे०॥

छाग शब्द के ग को ल होता है ।

३. ऊर्ध्वे दुर्भग सुभगे व. ॥८।१।१०२।हे०॥

दुर्भग, सुभग शब्दों के उ को दीर्घ होने पर ग को व होता है ।

४. सचित-पिशाचयोश्च. स ल्लौ वा ॥८।१।१०३।हे०॥

सचित और पिशाच शब्द के च को विकल्प से क्रमशः स तथा ल्ल होते हैं ।

५. (शब्द के आरम्भ में छ अपरिवर्तित बना रहता है । शब्द के मध्य में यह संस्कृत के समान ही च्च रूप ग्रहण कर लेता है ।—देखिए पि. प्रा. पारा नं २२६)

६. नीडादिपु ॥३।६२।वर०॥

नीड आदि शब्द के अनादि वर्तमान व्यञ्जन को द्वित्व होता है ।

नीडादिगण के शब्द—

नीडव्याहृतमण्डूकस्रोतासि प्रेमयूवने ।

ऋजु. स्पुल तथा तीलं धैलोच्यं च गणो यथा ॥ —कल्पलतिका

झ, जटिल = झडिलो, जडिलो ।<sup>१</sup>

र, व्यवसृजति = वोसिरामि ।<sup>२</sup>

ट > ढ, घट = घडो, नट = नडो, भट = भडो ।<sup>३</sup>

ढ, कैटभ = केडवो, शकट = सयडो, सटा = सडा ।<sup>४</sup>

ल, स्फटिक. = फलिडो, चपेटा = चविला, चविडा, पाटयति = फालेइ, फाडेइ ।<sup>५</sup>

ठ > ढ, मठः = मडो, कुठार = कुडारो, पठति = पडइ ।<sup>६</sup>

ल्ल, अङ्कोठ = अं कोल्लो, अङ्कोठतैलम् = अकोल्लतेल्लं ।<sup>७</sup>

ड > ट, तडाग = तटाको ( पैशाची ) ।

ल, गरुडः = गरुलो, वडवामुखम् = वलयामुहं तडागम् = तलायं ।<sup>८</sup>

१. जटिले जो झो वा ॥८१॥१९५॥हे०॥

जटिल शब्द के ज को विकल्प से झ होता है ।

२. (सृज् घातु के ज् को र् हो जाता है ।—देखिए पि प्रा पारा नं २२७)

३. टो ढ ॥८१॥१९६॥हे०॥

स्वर से परे अनादि असयुक्त ट को ढ होता है ।

(टवर्ण के असयुक्त अनादि प्रथम तथा द्वितीय वर्ण क्रमशः तृतीय तथा चतुर्थ वर्ण हो जाते हैं ।—देखिए पि प्रा पारा न. १९८)

४ सटा शकट-कैटभे ढ ॥८१॥१९६॥हे०॥

सूत्रोक्त शब्दों के ट को ढ होता है ।

५ ( घ ) स्फटिके ल ॥८१॥१९७॥हे०॥

स्फटिक शब्द के ट को ल होना है ।

( व ) चपेटा-पाटी वा ॥८१॥१९८॥हे०॥

चपेटा शब्द तथा प्यन्त पाटि घातु के ट को विकल्प से ल होता है ।

६. ठो ढ ॥८१॥१९९॥हे०॥

स्वर से परे असंयुक्त अनादि ठ को ढ होता है ।

७. अङ्कोठे ल्ल ॥८१॥२००॥हे०॥

अंकोठ शब्द के ठ को ल्ल होता है ।

८. को ल ॥८१॥२०२॥हे०॥

स्वर से परे अघपुष्प अनादि क को प्रायः ल होना है ।

- ढ ( अपरिवर्तित ), गाढम् = गाढं, सोढुम् = सोढुं ।  
 ण > न, गुणेण = गुनेन, विषाणम् = विसानं ( पैशाची ) ।<sup>२</sup>  
 ल, वेणुः = वेलू, वेणू ।<sup>३</sup>  
 त > लोप, कृतम् = कअं, रसातलम् = रसायलं ।  
 द, ऋतुः = उदू, रजतम् = रअदं, संयतः = संजदो ।<sup>४</sup>  
 च, छः; तुच्छम् = चुच्छं, छुच्छं ।<sup>५</sup>  
 ट, तगरः = टगरो, तूवरः = टूबरो, त्रसरः = टसरो ।<sup>६</sup>  
 ड, प्रतिसारः = पडिसारो, प्राभृतम् = पाहुडं ।<sup>७</sup>

१. ( सभी प्राकृत बोलियों में ढ अपरिवर्तित रहता है ।—देखिये पि. प्रा. पारा नं २३४ )
२. एो नः ॥८।४।३०६।हे०॥  
पैशाची में एकार को न होता है ।
३. वेणौ एो वा ॥८।१।२०३।हे०॥  
वेणु शब्द के ण को विकल्प से ल होता है ।
४. ऋत्वादिषु तो दः ॥२।७।वर०॥  
ऋत्वादि शब्द के त को द होता है ।  
( वररचि, क्रमदीश्वर तथा मार्कण्डेय के अनुसार महाराष्ट्री के भी अनेक शब्दों के त को द होता है । वे सभी शब्द ऋत्वादिगण में एकत्र किये हैं । हेमचन्द्र ने सूत्र नं. ८।१।२०९ में इस मत की आलोचना की है । बात यह है कि यह ध्वनि परिवर्तन शीरसेनो तथा मागधी में होता है, महाराष्ट्री में नहीं ।—देखिए पि. प्रा. पारा नं. १६६ । )
५. तुच्छे तथ-छी वा ॥८।१।२०४।हे०॥  
तुच्छ शब्द के त को च तथा छ होना है ।  
( बाद में आने वाले तालव्यवर्ण की समानता के लिये त को तालव्य च या छ होता है । )
६. तगर-त्रसर तूवरे ट ॥८।१।२०५।हे०॥  
सूत्रोक्त शब्दों के त को ट होता है ।  
( संस्कृत के दस्यवर्ण प्राकृत में बहुधा मूर्धन्य बन जाते हैं ।—देखिए पि. प्रा. पा. पारा. नं २१० )
७. प्रत्यादौ डः ॥८।१।२०६।हे०॥  
प्रति आदि शब्द के त को ड होता है ।

ए, गर्भित = गर्भिणी, अतिमुक्तरुम् = अगिर्जतयं ।<sup>१</sup>

र, सप्तति = सत्तरी ।<sup>२</sup>

ल, अतसी - अलसी, सातवाहन = सालवाहणो ।

पलितम् = पलिल, पलिअ ।<sup>३</sup>

व, पीतलम् = पीवल, पीअल ।<sup>४</sup>

ह, वितस्ति = विहत्थी, वसति = वसही ।<sup>५</sup>

थ > ढ, मेथि = मेढी, शिथिर = सिढिलो, प्रथम = पढमो ।<sup>६</sup>

ध, कथयति = कथेदि, कहेदि, नाथ = नाघो, णाहो ।<sup>७</sup>

ह, मिथुनम् = मिहुण, कथयति = कहेइ ।

द > लोप, वदनम् = वअण, मदनम् = मअण, नदी = नई ।

ड, दशनम् = डसण, दसणं, दोला = डोला, डोल ।<sup>८</sup>

१. गर्भितातिमुक्ते ण ॥८११२०८॥हे०॥

सूत्रोक्त शब्दों के त को ए होता है ।

२. सप्तती र ॥८११२१०॥हे०॥

सप्तति के त को र होता है ।

३. ( अ ) अतसी सातवाहने ल ॥८११२११॥हे०॥

सूत्रोक्त शब्दों के त को ल होता है ।

( ब ) पलिते वा ॥८११२१२॥हे०॥

पलित शब्द के त को विकल्प से ल होता है ।

४. पीते वो ले वा ॥८११२१३॥हे०॥

पीत शब्द के त को विकल्प से व होता है स्वाधिक ल परे रहते ।

५. वितस्ति-वसति-भरत-वातर-मातुलिङ्गे ह ॥८११२१४॥हे०॥

सूत्रोक्त शब्दों के त को ह होता है ।

६. मेथि-शिथिर-शिथिल प्रथमे षस्य ढ ॥८११२१५॥हे०॥

सूत्रोक्त शब्दों के ष को ढ होता है ।

७. षो ष ॥ ८१२६७॥हे०॥

शौरसेनी में ष को विकल्प से ष होता है ।

८. दशन दए-दग्ध दोला-दएड-दर दाह-दम्म-दभं-वदन-दोहदे दो वा ड ॥८११

२१७॥हे०॥

सूत्रोक्त शब्दों के द को विकल्प से ड होता है ।



ल, ण्ह , निम्ब\* = लिंबो, निबो , नापित = ण्हाचिओ, नाचिओ ।<sup>१</sup>

प > लोप, सुपुरुष = सुउरिसो, रिपु = रिऊ, कपि = कई ।

फ, पाटयति = फाडेइ, परुष = फरूसो, परिष = फलिहो ।<sup>२</sup>

म, नीप = नीमो, नीबो , आपीडः = आमेलो, आवेडो ।<sup>३</sup>

व, पापम् = पाव, दीपम् = दीव, उपमा = उवमा ।<sup>४</sup>

र, पापर्द्धि = पारद्धी ।<sup>५</sup>

फ > म, रेफ. = रेभो, सफलम् = सभल, शेफालिका = सेभालिआ,  
सेहालिआ ।<sup>६</sup>

ह, मुक्ताफलम् = मुक्ताहल ।

व > प, घालरु = पालको ( चू० पै० ) ।

१. निम्ब-नापिते ल ण्ह वा ॥८।१।२३०।हे०॥

निम्ब तथा नापित शब्द के ल को विवल्प से क्रमशः ल तथा एह होते हैं ।

२. पाटि-परुष-परिष-परिखा-पनस-पारिभद्रे फ ॥८।१।२३२।हे०॥

ष्यन्त पाटि घातु तथा परुष आदि शब्दों के प को फ होता है ।

३. नीपापीडे मो वा ॥८।१।२३५।हे०॥

सूत्रोक्त शब्दों के प को विवल्प से म होता है ।

( प के स्थान पर नियम के अनुसार व हो जाता है तथा कभी कभी म बन जाता है ।—देखिए पि प्रा. पारा नं. २४० । )

४. पो व ॥८।१।२३१।हे०॥

स्वर से परे असंयुक्त अनादि प को व होता है ।

५. पापर्द्धि र ॥८।१।२३६।हे०॥

पार्पर्द्धि शब्द के द्वितीय प को र होता है ।

६. फो म ही ॥८।१।२३६।हे०॥

स्वर से परे असंयुक्त अनादि फ को मही म, कहीं ह तथा कहीं दोनों (म ह) होते हैं ।

(पररुषि के अनुसार शब्द के भीतर तथा स्वरों के बीच में होने से फ सदा म बन जाता है । हेमचन्द्र के अनुसार प के स्थान पर प्राटन में म और ह दोनों रखे जा सकते हैं ।—देखिए पि प्रा. पारा नं. १९२)

म, विसिनी = भिसिणी ।<sup>१</sup>

म, य क्वन्ध = क्वन्धो कयन्धो ।<sup>२</sup>

१ व, शत्रुल = सत्रुनो, अत्तावू = अत्तावू ।<sup>३</sup>

म > फ, भगवती = फकवती ( चू० पै० ) ।

व, कैटभ = केढवो ।<sup>४</sup>

ह, सभा = सहा, शोभते = सोहइ नभ = ण ह ।

म > लोप, यमुना = जँउणा, चामुण्डा = चॉउण्डा ।<sup>५</sup>

ढ, विपम = विसढो, विसमो ।<sup>६</sup>

व, मन्मथ = वम्महो, अभिमन्थु = अहिवन्त्, अहिमन्न् ।<sup>७</sup>

स, भ्रमर = भसलो, भमरो ।<sup>८</sup>

१ विसि या म ॥८११२३८॥हे ॥

विसिनी शब्द के व को भ होता है ।

२ क्वन्धे म यौ ॥८११२३९॥हे०॥

क्वन्ध शब्द के व को म य होते हैं ।

३ वो व ॥८११२३७॥हे०॥

स्वर से परे असयुक्त ग्रनादि व को व होता है ।

४ कैटभे भो व ॥८११२४०॥हे०॥

कैटभ शब्द के भ को व होता है ।

५ यमुना चामुण्डा कामुकातिमुक्तके मोनुनासिकथ ॥८११२७८॥हे ॥

सूत्रोक्त शब्दों के म वा लोप होता है । लोप होन के बाद म के स्थान पर अनुनासिक होता है ।

६ विपमे मो ढो वा ॥८११२४१॥हे०॥

विपम शब्द के म को विकल्प से ढ होता है ।

७ (अ) म मघे व ॥८११२४२॥हे०॥

म मघ शब्द के म को व होता है ।

(ब) वाभिमयौ ॥८११२४३॥हे ॥

अभिमयु शब्द के म को विकल्प से व होता है ।

८ भ्रमरे सो वा ॥ ११२४४॥हे०॥

भ्रमर शब्द के म को विकल्प से स होता है ।

य > लोप, नयनम् = णअणं, वियोग = विञ्चोञ्चो ।

ज, यश = जसो, यम = जमो, याति = जाइ ।<sup>१</sup>

ज्ज, उत्तरीयम् = उत्तरिज्जं, उत्तरीयं, करणीयम् = करणिज्जं, करणीअं ।<sup>२</sup>

त, युष्मदीयः = तुम्हकेरो, युष्मादश = तुम्हारिसो ।<sup>३</sup>

ल, यष्टिः = लट्ठी ।<sup>४</sup>

ह, छाया = छाही, छाया ।<sup>५</sup>

र > ड, किरिः = किडी, भेर (दे०) = भेडो ।<sup>६</sup>

ए, करवीरः = कगवीरो ।<sup>७</sup>

ल, हरिद्रा = हलिद्रा, भ्रमरः = भसलो ।<sup>८</sup>

१. आदेशों ज. ॥८११२४६॥

आदि य को ज होता है ।

२. चोत्तरीयानोय-तीय कुञ्जे उज. ॥८११२४८॥

उत्तरीय शब्द तथा अनोय, तीय, वृत् प्रत्ययों के य को विबल्य से उज होता है ।

३. युष्मदर्थपरि त ॥८११२४६॥

युष्मद् शब्द के य को त होता है ।

४. यष्ट्या लः ॥८११२४७॥

यष्टि के य को ल होता है । -

५. छायायां होवन्ती या ॥८११२४९॥

अवन्त छाया शब्द के य को विबल्य से ह होता है ।

६. किरि-भेरे रो ड. ॥८११२५१॥

सूत्रोक्त शब्दों के र को ड होता है ।

७. करवीरे ण. ॥८११२६३॥

करवीर शब्द के प्रथम र को ण होता है ।

८. हरिद्रादी लः ॥८११२५६॥

हरिद्रा आदि शब्दों के असमुत्त र को ल होता है ।

भ्रमरे धसंतिमोमे एय । धृति ।

भ्रमर शब्द में म को ध होने पर ही र को ल होता है ।

ल > ण, लाहल = णाहलो ललाटम् = णडाल, णिडाल ।

र, स्थूलम् = थोर ।<sup>२</sup>

व > लोप, जीव = जीओ, लावण्य = लाअण्ण ।

भ, विसिनी = भिसिणी ।<sup>३</sup>

म, स्वप्न = सिमिणो, सिविणो, नीमी = नीमी नीवी ।<sup>४</sup>

श > छ, शमी = छमी, शाव = छावो ।<sup>५</sup>

स, शब्द = सद्दो, निशा = णिसा ।<sup>६</sup>

ह, दश = दह, दस एसादश = एआरह, एआरस ।<sup>७</sup>

प > छ, पण्मुत्त = छमुहो ।

एह, स्नुपा = सुण्हा सुसा ।<sup>८</sup>

स, कपाय = कसाओ, निम्प = निहसो ।

ह, पापाण = पाहाणो, पासाणो ।

१ ( अ ) लाहल-लाङ्गल लाङ्गूले वादेण ॥८॥१॥२६६॥हे०॥

सूत्रोक्त शब्दों के आदि ल को विकल्प से ण होता है ।

( ब ) ललाटे च ॥८॥१॥२६७॥हे०॥

ललाट शब्द के आदि ल को ण होता है ।

२ स्थूले लो र ॥८॥१॥२६९॥हे०॥

स्थूल शब्द के ल को र होता है ।

३ विसि-यां भ ॥२॥३८॥वर०॥

विसिनी शब्द के व को भ होता है ।

४. स्वप्न नीब्बोर्वा ॥८॥१॥२६९॥हे०॥

सूत्रोक्त शब्दों के व को विवल्ग से म होता है ।

५. पट्ट-शमी-शाव मुष्ठा सप्तपर्णोवादेश्छ ॥ ११॥२६८॥हे०॥

सूत्रोक्त शब्दों के आदि वर्ण को छ होता है ।

६ श पो स ॥८॥१॥२६०॥हे०॥

श तथा प को स होता है ।

७ दश-पापाणे ह ॥८॥१॥२६२॥हे०॥

दश एवं पापाण शब्द के श, प को विकल्प से ह होता है ।

८. स्नुपाया ण्हो न वा ॥ ११॥२६१॥हे०॥

स्नुपा शब्द के प को विकल्प से ण्ह होता है ।

स > छ, सप्तपर्णः = छत्तिवर्णो, सुधा = छुहा ।

ह, दिवस. = दिवहो, दिवसो ।<sup>१</sup>

ह > घ, सिंहः = सिंघो, सीहो ; संहारः = संघारो, संहारो ।<sup>२</sup>

---

१. दिवसे सः ॥८।१।२६३।हे०॥

दिवस शब्द के स की विकल्प से ह होता है ।

२. ही षोऽनुस्वारान् ॥८।१।२६४।हे०॥

अनुस्वार के बाद आने पाते ह की विकल्प से घ होता है ।

## तीसरा अध्याय

### संयुक्तव्यञ्जन-परिवर्तन

१. शब्द के प्रारम्भ में संयुक्तव्यञ्जन नहीं आते हैं। किन्तु इस नियम के निम्न अपवाद हैं :—

(अ) यदि शब्द के प्रारम्भ में ण्ह, म्ह या ल्ह हो अथवा व्यञ्जन + र हो।

(आ) यदि संयुक्तव्यञ्जन समस्तपद के द्वितीयपद के आदि में हो।

उदाहरण—क्षत्रिय. = रक्षितो, ध्वज = वओ, स्पन्दनम् = फंदणं, त्यागी = चाई।

अपवाद—(अ) स्नानम् = ण्हाण, स्मः = म्हो, हुसति = ल्हसह, हृद = द्रहो।

(आ) महिपस्कर = महिसकरन्वो।

२. शब्द के मध्य में आनेवाले संयुक्तव्यञ्जनों में प्रायः समानोच्चारण की प्रवृत्ति पाई जाती है किन्तु निम्न संयुक्तव्यञ्जन इसके अपवाद हैं—

(अ) वह व्यञ्जन जिसमें उस व्यञ्जन के वर्ग का हकार युक्त व्यञ्जन मिला हो।

(आ) संयुक्त ध्वनियों ण्ह, म्ह, ल्ह।

(इ) व्यञ्जन + र।

(ई) अनुनासिक + व्यञ्जन जो कि अनुनासिक के ही वर्ग का हो।

उदाहरण—वाष्पतिराज = वष्पइराओ, उल्हा = उल्हा।

१. देखिए वि. प्रा. पारा न. २६८।

२. देखिए वि. प्रा. पारा नं. २६९।

अपवाद :—(अ) मध्यम् = मज्जं, तुच्छम् = चुच्छं, लुच्छं ।

(आ) कृष्णः = कण्हो, अस्मादृशः = अम्हारिसो, प्रह्लादः = पल्हाओ ।

(इ) चोद्रहो ( देशी शब्द ) = तरुग, युवा ।

(ई) मकरन्दः = मन्थरन्दो, मञ्जूपां = मञ्जूसा ।

३. समानीकरण का नियम :—

संयुक्तव्यञ्जनों में प्रायः एक व्यञ्जन दूसरे व्यञ्जन के अनुरूप हो जाता है । इसकी व्यवस्था -बलबल की दृष्टि से होती है । समानबलवाले संयुक्तव्यञ्जनों में प्रथमव्यञ्जन द्वितीय-व्यञ्जन के अनुरूप हो जाता है । असमानबलवाले संयुक्त व्यञ्जनों में हीनबलवाला व्यञ्जन अधिकबलवाले व्यञ्जनका रूप धारण कर लेता है ।

बल की दृष्टि से व्यञ्जनों का क्रम :—

(अ) वर्ग के प्रथम ४ वर्ण

(आ) अनुनासिक वर्ण

(इ) ल, स, व, य, र (क्रमशः)

३.१ व्यञ्जन + व्यञ्जन

घलत्कारः = घलत्कारो, उत्पलम् = उत्पलं, प्राग्भारः = पठभारो, उद्घातम् = उद्घातं ।

३. देखिए Woolner's Introduction To Prakrit

Page—17(33)

( प्रस्तुत अध्याय में ३.१ से ३.१२ तक व्यञ्जन पद से वर्ण के प्रथम चार वर्ण तथा अनुनासिक पद से पञ्चम वर्ण अभिप्रेत हैं )

३.१ (अ) क-ग-ङ-ञ-ट-ठ-ड-ण श प-स - × क - × पापुष्पं सुक् ॥८१॥७७॥  
यदि संयुक्तव्यञ्जनों में प्रथम व्यञ्जन सूत्रोक्त व्यञ्जनों में से हो तो उभरा धीर हो जाता है ।

(ब) अनादी उपदेशोद्दिगम् ॥८१॥८१॥

पद के अनादि में पौं-  
पौं की द्वित्व  
होगा ।

३. २ व्यञ्जन + अनुनासिक

बलहीन अनुनासिक बलयुक्त व्यञ्जन के अनुरूप हो जाता है ।  
अग्निः = अग्नी, युग्मम् = जुग्मं, प्रयत्नः = पयत्तो ।

३. ३ व्यञ्जन + य

बलहीन य बलयुक्त व्यञ्जन के रूप में बदल जाता है ।

चाणक्यः = चाणक्यो, कुप्यति = कुप्पइ, अभ्यर्थनम् =  
अवभत्थणं ।

३. ४ दन्त्यवर्ण + य

दन्त्यवर्ण के साथ य आने पर दन्त्यवर्ण तालव्यवर्ण में बदल  
जाता है । तत्पश्चात् य उसके अनुरूप हो जाता है ।

अत्यन्तम् = अच्चन्तं, नेपथ्यम् = णेवच्छं, अद्य = अज्ज,  
मध्यम् = मज्झं ।

(स) द्वितीयतुर्ययोरूपरि पूर्वः ॥८॥२॥१०॥हे०॥

यदि संयुक्तव्यञ्जन का द्वितीयव्यञ्जन वर्ण का द्वितीय या चतुर्थ  
व्यञ्जन हो तो प्रथमव्यञ्जन को क्रमशः द्वितीयव्यञ्जन के वर्ण  
का प्रथम या तृतीय व्यञ्जन हो जाता है ।

(तुलना कीजिए पि. प्रा. पारा नं १८५ तथा २७०)

३. २ देखिए पि. प्रा. पारा न. २७६, २७७ ।

३. ३ जब अन्तिम ध्वनि या शेष वर्ण अथवा अनुनासिक अर्धस्वर से टकराते हैं  
तो, जब तक उनके बीच में अंश स्वर न आए, नियम यह है कि अर्धस्वर  
शब्द में मिला लिया जाता है । (पि. प्रा. पारा नं. २७९)

३. ४ (अ) (१) इयव्यद्या च्छ्रजा. ॥३॥२७॥वर०॥

इय, इय, इय को क्रमशः च छ ज होते हैं ।

(२) व्यद्योर्भ. ॥३॥२८॥वर०॥

व्य तथा व्य को भ होता है ।

(ब) देखिए पि. प्रा. पारा न २८० ।



३. ५ दन्त्यवर्ण + व

३. ५ ॥ दन्त्यवर्ण के साथ व आने पर प्रायः व दन्त्यवर्ण के समान हो जाता है किन्तु कभी कभी पहले दन्त्यवर्ण तालव्यवर्ण बन जाता है, तत्पश्चात् व उसने अनुरूप हो जाता है ।

चत्वारि = चत्तारि, जम्बुद्वीप = जम्बुद्वीपो, ऊर्ध्वम् = उर्ध्वम् । चत्वरम् = चत्वरं, पृथ्वी = पिच्छी, विद्वान् = विज्ज बुद्ध्वा = बुद्ध्वा ।

३. ६ व्यञ्जन + र, ल, व

घलहीन र, ल, व घलयुक्त व्यञ्जन में बदल जाते हैं ।

विक्रम = विक्रमो, रात्रि = रत्ती, विकलव = विक्लो, पक्वम् = पक्व, ध्वज = वधो ।

३. ७ अनुनासिक + व्यञ्जन

याद पहला अनुनासिक द्वितीय व्यञ्जन के वर्ग का हो तो प्रायः उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता है ।

लाञ्छनम् = लाञ्छण, कण्ठ = कण्ठो, बन्ध = बन्धो ।

३. ८ अनुनासिक + अनुनासिक

यदि भिन्न वर्गों के अनुनासिक प्रापस में मिलें तो म के पूर्व आने वाले ङ् और ण् को अनुस्वार हो जाता है । म् को म् तथा म् को ण् हो जाता है ।

पराङ्मुख = परमुहो, पण्मुख = छमुहो, उन्मुख = उम्मुहो, निम्नगा = निण्णआ ।

३. ५ (अ) देखिए पि. प्रा. पारा न. २९८, २९९

(आ) त्व ध्व द्व ध्वा च छ-ज भा वचित् ॥ ८१ ॥ १९१ ॥ हि० ॥

कहीं कहीं 'स्व, ध्व, द्व, ध्वा' को क्रमशः च, छ, ज, भ होते हैं ।

३. ६ देखिए पि. प्रा. पारा न. २८७, २९६, २९७ ।

३. ७ देखिए पि. प्रा. पारा न. २७२ ।

३. ८ देखिए पि. प्रा. पारा न. ३७८ ।

३. ९ अनुनासिक + अन्त स्य

बलहीन अन्त स्य बलयुक्त अनुनासिक के अनुरूप हो जाता है।  
हिरस्य = हिरण्य, मन्या = कण्ठा, मन्ये = मण्णे अन्वेयगम् =  
अण्णोसण।

३ १० र + दन्त्यवर्ण—

यदि दन्त्यवर्ण के पूर्व र आवे तो वह दन्त्यवर्ण के साथ मिल  
जाता है, तत्त्वज्ञान के बहुधा मूर्धन्यवर्ण हो जाते हैं।

॥१॥ चक्रवर्ती = चक्रवर्टी, अर्थ = अट्ठो, गर्दभ = गड्डो, गदो,  
जर्धम = अट्ट, अठ।

३. ११ श प, स + व्यञ्जन

(१) श्च, श्च > च्च, आश्चयम् = अश्चरिअ, निश्चिद्रम् =  
निश्चिद्रम्।

(२) श्च प्ल > च्ल, गुप् म = सुप्त् सुप्त्, पुष्करिणी =  
पोष्करिणी।

(३) श्च, च्च > च्च, = च्चि = च्चि, सुष्ठु = सुष्ठु।

(४) श्च प्ल > च्ल, पुष्पम् = पुष्पं निष्पम् = निष्पम्।

३ १० देविण वि प्रा पारान २२२।

३. १० जिग वगसमूह में र रेण रूप में) ध्वनि में पढ़ते आना हो उसमें  
दन्त्यवर्णों के स्थान पर बहुधा मूर्धन्यवर्ण आ जाते हैं। यह ध्वनि-परि-  
वर्तन निरूपण व माग में हुआ है। दक्षिण वि प्रा. पारान २८९)

३ ११ ( क ) ( १ ) घ सप्ता छ ॥२१०॥पर०॥

घ, सप्ता को छ हो जाता है।

( २ ) दाहृणा स ॥२११॥पर ॥

दाहृ, दा को स होता है।

( ३ ) दृश्य ठ ॥२१२॥पर ॥

ठ के स्थान पर ठ होता है।

( ४ ) दाहृण प ॥२१३॥पर ॥

दाहृ को क होता है।

(५) स्क, स्व > क्व, अवस्कन्दः = अवक्खन्दो, प्रस्खलन्ती = पक्खलन्ती ।

(६) स्त, स्थ > त्थ, अस्ति = अत्थि, अवस्था = अवत्था ।

(७) स्प, स्फ > फ्फ, प्रतिस्पर्धीः = पडिप्फद्धी आस्फालनं = अप्फालणं ।

३. १२ श, प, स + अनुनासिक

यदि संयुक्त व्यञ्जन में श, प, स के बाद अनुनासिक आये तो श, प, स को ह् हो जाता है तथा वर्णों के क्रम में परिवर्तन हो जाता है ।

ग्रीष्मः = गिम्हो, अरमाहशः = अम्हारिसो, स्नानम् = प्ण्हाणं, प्रश्नः = पण्हो ।

( ५ ) देखिए ३. ११ ( क ), ( २ ) ।

( ६ ) स्तस्य थः ॥३॥२॥वर०॥

स्त के स्थान पर थ होता है ।

( ७ ) स्पस्य सर्वत्र स्थितस्य ॥३॥३॥वर०॥

सर्वत्र स्प को फ् होता है ।

( ख ) देखिए पि० प्रा० पारा नं० ३०१, ३०२, ३०३, ३०५, ३०६, ३०७ तथा ३११ ।

( ग ) यदि संयुक्तव्यञ्जन में प्रथम व्यञ्जन श, प या स हो तथा द्वितीय व्यञ्जन वर्ण के प्रथम दो वर्णों में से कोई हो तो श, प या स द्वितीय व्यञ्जन का रूप धारण कर लेता है तथा द्वितीय व्यञ्जन हकारयुक्त हो जाता है ।

( तुलना कीजिए—Woolner's Introduction To Prakrit Page 18 (38) )

३. १२ ( ख ) पक्ष्म-क्ष्म-ष्म-स्म-ह्मां म्हः ॥८॥२॥७४॥हे०॥

पक्ष्म स्थित क्ष्म एवं स्म आदि संयुक्त व्यञ्जनों को म्ह होता है ।

( व ) मूक्ष्म-क्ष्म-ष्म-स्म-ह्म-ह्ण-क्ष्णं ष्हः ॥८॥२॥७५॥हे०॥

मूक्ष्म संयुक्तव्यञ्जनों को ष्ह होता है ।

( तुलना कीजिए पि. प्रा. पारा नं. ३१२ )

३. १३ श, प, स + अन्त स्थ(ल को छोड़कर)

श, प, स के बाद अन्त स्थ आने पर अन्त स्थ पूर्ववर्ती व्यञ्जन का रूप धारण कर लेता है ।

अश्व = अस्सो, अवश्यम् = अवस्स, मनुष्य. = मणुस्सो, सहस्रम् = सहस्स ।

४. विसर्ग + क, ख, प, फ

क, ख, प, फ के पूर्व आनेवाले विसर्ग को स हो जाता है । तत्पश्चान् पूर्वोक्त नियमों के आधार पर उसमें परिवर्तन होता है । अन्त करणम् = अन्तकरणं, दुःखम् = दुक्ख, अन्त पातः = अन्तप्पाओ ।

५. ह् + न ण, ल, म, य = एह, ल्ह, म्ह, य्ह (क्रमशः)

यहि = यण्ही पूर्वाह्ण + = पुव्वण्हो, प्रह्लादः = पल्हाओ, ब्राह्मण = बम्हणो, गुह्यम् = गुय्हं ।

६. विशिष्ट संयुक्तव्यञ्जन

(१) क्ष > क्ख, च्छ, ज्ज ।

मक्षिमा = मक्खिमा, मच्छिन्ना ; लक्षणम् = लक्खणं, अधिम = अच्चि, प्रश्नीणम् = पग्गीणं ।

(२) कम > क्क, ह्म > म्म ।

रुक्मिणी = रुक्किणी, कुह्लम् = कुम्मलं ।

३ १३ देसिए वि प्रा पारा न ३१६ ।

४ देसिए वि प्रा. पारा नं ३२९ ।

५ ( अ ) ह्नेह्लह्मपु नत्तमा म्पित्तिह्मं ॥३॥दापर०॥

सूत्रोक्त संयुक्त व्यञ्जनों में क्रमशः न ल म पूर्व में आ जाते हैं ।

( आ ) दो दोः ॥०१२१२४॥

दो को य्ह हो जाता है ।

६ ( १ ) श ख कश्चित्तु छन्ती ॥०१२१३॥

श को ख होता है, वही वही पर छ तथा श भी होते हैं ।

( २ ) ह्म नमो. ॥०१२१०२॥

ह्म, कम को क्रमशः म्म, क्क होता है ।

(३) झ > ण (शब्द के प्रारम्भ में), ण (शब्द के मध्य में) ।

ज्ञानम् = णाण, विज्ञानम् = विण्णाण ।

(४) त्म > प्प, आत्मा = अप्पा, अत्ता ।

(५) त्र > हि, ह, त्थ, कुत्र = रुहि, कह, कत्थ, यत्र = जहि, जह, जत्थ ।

(६) प्स, त्स > च्छ, अप्सरा = अच्छरा उत्साह = उच्छाहो ।

(७) घ, घ्य र्य > व्ज, मयम् = मज्ज, शय्या = सेज्जा, भार्या = भज्जा ।

(८) प्, प्प > ह, वाप्प = वाहो, कार्पापण = काहावणो ।

### ७ स्वरभक्ति

सयुक्तव्यञ्जन में यदि एक व्यञ्जन य, र ल, अथवा

अनुनासिक हो तो उन्हें स्वर के द्वारा विभक्त कर दिया

( ३ ) झञोण ॥ ११३२ ॥ हे ॥

सूत्रोक्त सयुक्तव्यञ्जनों को ण हो जाता है ।

( देखिए पि प्रा पा न १७ )

( ४ ) मस्मात्मनो पो वा ॥ १२१६१ ॥ हे ॥

सूत्रोक्त शब्दों के सयुक्तव्यञ्जनों को विकल्प से प होता है ।

( ५ ) त्रपो हि ह त्या ॥ १२१६१ ॥ हे ॥

त्रप प्रत्यय को हि ह त्थ होते हैं ।

( ६ ) ह्रस्वात् थ्य थ त्स प्सापनिश्चले ॥ १२१२१ ॥ हे ॥

ह्रस्व से परे थ्य थ त्स प्त को छ होता है किन्तु निश्चल म नहीं होता है ।

( ७ ) शब्ध-य्यो ज ॥ १२१२४ ॥ हे ॥

श, ध्य, र्य को ज होता है ।

( ८ ) ( ङ ) वाप्पेऽत्रुणि ह ॥ ३१३ ॥ वर ॥

अश्रुवाचक वाप्प शब्द के ष्य को ह होता है ।

( ङ ) कार्पापणे ॥ ३१३ ॥ वर ॥

कार्पापण के प को ह होता है ।

७ ( ङ ) क्लृष्टिष्टिरत्नक्रियाशाङ्गेषु तत्स्वरवत्पूर्वस्य ॥ ३१६ ॥ वर ॥

सूत्रोक्त शब्दों में सयुक्तव्यञ्जन, तदपत स्वर से विभक्त होता है ।

## चौथा अध्याय

### सन्धि-प्रकरण

प्राकृत में सन्धि-व्यवस्था वैकल्पिक है, नित्य नहीं। सन्धि के दो भेद हैं—१. स्वर-सन्धि २ व्यञ्जन-सन्धि।

#### स्वर-सन्धि

१. अकार, इकार या उकार के बाद सवर्ण-स्वर आने पर उनके स्थान पर सवर्ण दीर्घ हो जाता है।

मगह्+अहिवई = मगहाहिवई, मगह् अहिवई (मगधाधिपति)।

विसम + आयवो = विसमायवो, विसम आयवो (विपमातप.)।

मुणि + ईसरो = मुणीसरो, मुणि ईसरो (मुनीश्वर)।

भागु + उवञ्मायो = भागुवञ्जायो, भागु उवञ्जायो (भानू पाध्याय)।

२. समस्तपद में प्रथमपद के अन्त में आनेवाले दीर्घ स्वर को कहीं नित्यरूप से तथा कहीं विकल्प से ह्रस्व होता है, तथा ह्रस्व स्वर को दीर्घ।

अन्त + वेई = अन्ता वेई, (अन्तर्वेदि) सत्त + वीसा = सत्तावीसा, (सप्तविंशति) पर्ई हरं, पइ हरं (पतिगृहम्)।

३. यदि अ या आ के बाद सरलव्यञ्जन से पूर्ववर्ती इकार या उकार हो तो उन्हें ए या ओ हो जाता है।

वास + इसी = वासेसी, वास इसी (व्यासपि), दिण + ईसो = दिणेसो, दिण ईसो (दिनेश), गूढ + उअर = गूढोअर,

१. देखिए पि. प्रा. पारा नं. १४८।

२. दीर्घ-ह्रस्वी मिथो वृत्तौ ॥८११४॥हे०॥

समस्तपद में स्वरों को दीर्घ ह्रस्व बहुलता से होते हैं।

३. देखिए पि. प्रा. पारा नं. १४९।

गृढ उधरं ( गृढोदरम् ), सास + ऊसासा = सासोसासा,  
सास ऊसासा ( श्वासोच्छ्वासः ), रागा + इअरो = रामेअरो,  
रामा इअरो ( रामेतरः ) ।

४. यदि अ या आ के वाद संयुक्तव्यञ्जन से पूर्ववर्ती इकार या उकार हो, तो उनको ए या ओ न होकर अ या आ का लोप हो जाता है ।

गज + इंदो = गइंदो ( गजेन्द्रः ), कण्ग + उप्पलं = कण्णुप्पलं  
( कर्णोत्पलम् ), महा + ऊसवो = महूसवो ( महोत्सवः ) ।

५. यदि प्रथमपद के अन्त में अ हो तथा द्वितीयपद के आरम्भ में असमान उद्बृत्तस्वर हो तो कहीं-कहीं उनमें से अ का लोप हो जाता है ।

राअ + उलं = राउलं, राअउलं, ( राजकुलम् ) वाअ + उत्तो =  
वाउत्तो, वाअउत्तो ( वातपुत्रः ) ।

६. यदि मौलिक या उद्बृत्त अ या आ के वाद मूल ए या ओ आवे तो अ या आ का लोप हो जाता है ।

गाम + एणी = गामेणी ( देशीशब्द ), उदअ + ओल्लं =  
उदओल्लं, ( उदकार्द्रम् ), मट्टिआ + ओल्लित्तं = मट्टिओल्लित्तं  
( मृत्ति ऋवलिप्तम् ) ।

४. देखिए पि. प्रा. पारा नं १५. ।

तुलना कीजिए—

मुक् ॥ ८१११ ०॥ हे ॥

स्वर का स्वर परे रहते प्रायः लोप होता है ।

५. देखिए पि. प्रा. पारा नं १६० ।

उद्बृत्त स्वर—

व्यञ्जनसंपृक्तः स्वरो व्यजने लुप्ते योऽत्रशिष्यते स उद्बृत्त इहोच्यते—

हे० सूत्र ८११८ की वृत्ति ।

६. देखिए पि. प्रा. पारा नं. १५३ ।

## स्वरसन्धि निषेध

७. इ, ई और उ ऊ के बाद कोई भी द्विजातीय स्वर आवे तो उनमें सन्धि नहीं होती है।  
 वि + अ = विअ ( इअ ), सु + अलक्रियं = सुअलक्रिय ( स्व लङ्कृतम् ) । बहु + अवऊढो = बहुअवऊढो ( बहुपगूढ ) ।
८. ए तथा ओ के बाद स्वरवर्ण होने पर उनमें सन्धि नहीं होती है।  
 वणे + अडइ = वणे अडइ ( वनेऽऽति ), अहो + अच्छरिअ = अहो अच्छरिअ ( अहो-आश्चर्यम् ), देवीए + एत्थ = देवीए एत्थ ( देव्या अत्र ), एओ + एत्थ = एओ एत्थ ( एओऽत्र ) ।
९. स्वर के बाद उद्बृत्त स्वर होने पर सन्धि नहीं होती है।  
 निसा + अरो = निसाअरो ( निशाचर ), रयणी + अरो = रयणीअरो ( रजनीचर ) ।
१०. क्रियापद के स्वर के बाद स्वर आने पर सन्धि नहीं होती है।  
 होइ + इह = होइ इह ( भवतीह ) ।

## अव्ययस्वर सन्धि

११. पद के बाद आने वाले अपि शब्द के अ का विकल्प से लोप हो जाता है। अवशिष्ट पि यदि स्वर से परे हो तो उसे वि ही जाता है।  
 केण + अपि = केण वि, केणावि ( केनापि ) ।  
 किं + अपि = किं पि, किमपि ( किमपि ) ।

७. न युवणंस्यास्वे ॥८।१।१०।हे ॥

इवर्ण उवण से असमान स्वर परे रहते सन्धि नहीं होती है।

८. एदोतो स्वरे ॥८।१।७।हे८॥

एकार ओकार से परे स्वर होने पर सन्धि नहीं होती है।

९. स्वरस्योद्बृत्ते ॥८।१।८।हे ॥

स्वर से परे उद्बृत्त स्वर होने पर सन्धि नहीं होती है।

१०. त्यादे ॥ १।१।१।हे०॥

तिप आदि के स्वर से परे स्वर होने पर सन्धि नहीं होती है।

११. पदादपेर्वा ॥८।१।११।हे०॥

पद से परे अपि शब्द के अ का विकल्प से लोप होता है।

( ध्वनिबल की हीनता के प्रभाव से अव्यय बहुधा आरम्भ के स्वर का लोप कर देते हैं। स्वर के बाद अपि का शप पि वि म परिणत हो जाता है।

पि प्रा पारा न १३५ ) ।



१२. पद के बाद आने वाले इति के आदि इ मा लोप हो जाता है तथा अवशिष्ट ति यदि स्वर से परे हो तो उसे च्ति हो जाता है ।  
 किं + इति = किं ति ( किमिति ), न जुत्तं + इति = न जुत्तं ति ( न युक्तमिति ), तद्वा + इति = तद्वा च्ति ( तथेति ) ।
१३. त्यदादि से परे अव्यय या अव्यय से परे त्यदादि होने पर द्वितीय पद के आदिस्वर का विकल्प से लोप होता है ।  
 अम्हे + एत्थ = अम्हेत्थ, अम्हे एत्थ ( वयमत्र ) ।  
 जइ + इमा = जइमा, जइ इमा ( यदीयम् ) ।

### व्यञ्जनसन्धि

१. संस्कृत अः को ओ हो जाता है ।  
 अमत = अग्गओ, पुरतः = पुरओ, पुनः = पुणो ।
२. पद के अन्त में आनेवाले म् को अनुस्वार हो जाता है किन्तु म् के बाद स्वर आने पर म् को अनुस्वार विकल्प से होता है ।  
 गिरिम् = गिरि, जलम् = जलं, फलम् = फलं ।  
 उसभम् + अजिअ = उसभं अजिअं, उसभमजिअं ( ऋषभमजितम् ) ; यम् + आहु = यं आहु यमाहु ( यमाहु ) ।

१२. इते. स्वरात् तथ द्वि ॥ ८१११२२हे०॥  
 पद से परे इति के इ का लोप होता है । तथा स्वर से परे तकार को द्विच होता है ।
१३. त्यदाद्यव्ययात् तरस्वरस्य लुक् ॥ ८१११२०हे०॥  
 त्यदादि या अव्यय से परे अव्यय या त्यदादि होने पर अव्यय या त्यदादि के आदि स्वर का विकल्प से लोप होना है ।
१. मौलिक् अर से निकला अ सभी प्राकृत बोलियों में अधिकांश स्थलों पर ओ बन जाता है । देखिए पि प्रा पारा न० ३४२ ।
२. (अ) मौनुस्वारः ॥ ८१११२३॥हे०॥  
 अन्त्य मकार को अनुस्वार हो जाता है ।  
 (ब) वा स्वरे मथ ॥ ८१११२४हे०॥  
 स्वर परे रहते अन्त्य मकार को विकल्प से अनुस्वार होता है ।

३. ह्रस्वन्त अन्त्यव्यञ्जन को भी बहुधा मकार होकर अनुस्वार हो जाता है ।

साक्षात् = सक्खत्, यत् = जत्, तत् = तत् ।

४. ङ्, ञ्, ण्, न् को व्यञ्जन परे रहते अनुस्वार हो जाता है ।

पराङ्मुखः = परंमुहो, कञ्चुकः = कंचुओ, पण्मुखः = छंमुहो, सन्ध्या = संभा ।

५. अनुस्वार के वाद कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग तथा पवर्ग के अक्षर होने पर अनुस्वार को विकल्प से क्रमशः ङ्, ञ्, ण्, न्, एवं म होते हैं ।

पं+को = पङ्को, पंको, लं+द्धणं = लङ्द्धणं, लंद्धणं,

सं+दो = सण्दो, संदो; चं+दो = चन्दो, चंदो;

आरं+भो = आरम्भो, आरंभो ।

६. वकादि शब्दों के प्रथम, द्वितीय या तृतीय स्वर के अन्त में अनुस्वार आगम के रूप में होता है ।

वक्रम् = वंकं, मनस्वी = मणंसी, उपरि = अवरि ( उवरिं ) ।

३. बहुलाधिकाराद् अन्यस्यापि व्यञ्जनस्य मकारः ॥८।१।२।३।४।५।६।७।८।९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१७।१८।१९।२०।२१।२२।२३।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।३२।३३।३४।३५।३६।३७।३८।३९।४०।४१।४२।४३।४४।४५।४६।४७।४८।४९।५०।५१।५२।५३।५४।५५।५६।५७।५८।५९।६०।६१।६२।६३।६४।६५।६६।६७।६८।६९।७०।७१।७२।७३।७४।७५।७६।७७।७८।७९।८०।८१।८२।८३।८४।८५।८६।८७।८८।८९।९०।९१।९२।९३।९४।९५।९६।९७।९८।९९।१००। सूत्र की वृत्ति ॥

४. ङ-ञ-ण नो व्यञ्जने ॥८।१।३।५।६।७।८।९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१७।१८।१९।२०।२१।२२।२३।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।३२।३३।३४।३५।३६।३७।३८।३९।४०।४१।४२।४३।४४।४५।४६।४७।४८।४९।५०।५१।५२।५३।५४।५५।५६।५७।५८।५९।६०।६१।६२।६३।६४।६५।६६।६७।६८।६९।७०।७१।७२।७३।७४।७५।७६।७७।७८।७९।८०।८१।८२।८३।८४।८५।८६।८७।८८।८९।९०।९१।९२।९३।९४।९५।९६।९७।९८।९९।१००।

ङ, ञ, ण, न—इनके स्थान पर व्यञ्जन परे रहते अनुस्वार होता है ।

( तुलना कीजिए पि प्रा पारा नं २७९ )

५. वर्गेन्त्यो वा ॥८।१।३।८।९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१७।१८।१९।२०।२१।२२।२३।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।३२।३३।३४।३५।३६।३७।३८।३९।४०।४१।४२।४३।४४।४५।४६।४७।४८।४९।५०।५१।५२।५३।५४।५५।५६।५७।५८।५९।६०।६१।६२।६३।६४।६५।६६।६७।६८।६९।७०।७१।७२।७३।७४।७५।७६।७७।७८।७९।८०।८१।८२।८३।८४।८५।८६।८७।८८।८९।९०।९१।९२।९३।९४।९५।९६।९७।९८।९९।१००।

वर्ग के वर्ण परे रहते अनुस्वार को उसी वर्ग का अन्तिम वर्ण विकल्प से हो जाता है ।

६. वक्रादावन्त ॥८।१।३।६।७।८।९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१७।१८।१९।२०।२१।२२।२३।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।३२।३३।३४।३५।३६।३७।३८।३९।४०।४१।४२।४३।४४।४५।४६।४७।४८।४९।५०।५१।५२।५३।५४।५५।५६।५७।५८।५९।६०।६१।६२।६३।६४।६५।६६।६७।६८।६९।७०।७१।७२।७३।७४।७५।७६।७७।७८।७९।८०।८१।८२।८३।८४।८५।८६।८७।८८।८९।९०।९१।९२।९३।९४।९५।९६।९७।९८।९९।१००।

वक्रादि शब्दों में प्रयोगानुसार प्रथम, द्वितीय या तृतीय स्वरों पर आगम के रूप में अनुस्वार होता है ।

७. क्त्वा तथा स्यादि प्रत्ययों के ण तथा सु के आगे विकल्प से अनुस्वार ना आगम होता है ।

वृत्ना = काऊण, काऊग, कालेन = काऊणं, कालेण, जिनानाम् = जिणाण, जिगाण, वीरेषु = वीरेसु, वीरेसु ।

८. विंशति आदि शब्दों के अनुस्वार का लोप होता है ।

विंशति = बीसा, विंशत् = बीसा ।

९. मांस आदि शब्दों के अनुस्वार ना विकल्प से लोप होता है ।

मांसम् = मांसं, मसं सिंह = सीहो, सिघो ।

१०. जत्र स्वरादिपदों की द्विरुक्ति हो तो उनके बीच में विकल्प से म् का आगम होता है ।

एकैरुम् = एकैमेक, अङ्गे अङ्गे = अङ्गमङ्गम्, पत्ने एकेकमित्यादि ।

७ क्त्वा स्यादेर्ण-स्वोर्वा ॥ १।२५।हे०॥

क्त्वा तथा स्यादि के ण तथा सु विकल्प से अनुस्वारान्त होते हैं ।

८ त्रिषत्यादेर्लुक् ॥ ८।१।२८।हे०॥

९ मासादेर्वा ॥ ८।१।२९।ह ॥

मासादि शब्दों के अनुस्वार को विकल्प से लोप होता है ।

१०. वोप्यात्स्यादेर्वोप्ये स्वरे मो वा ॥ ८।२।१।हे ॥

वोप्यार्थक पद से परे स्यादि (स्वादि) प्रत्यय के स्थान पर स्वरादि वोप्यार्थक पद परे रहते विकल्प से म् होता है ।

## पाँचवाँ अध्याय

### अव्यय

प्रायः प्राकृत-अव्यय संस्कृत अव्यय से स्व-व्यञ्जन परिवर्तन द्वारा बनते हैं। जैसे अति = अइ, अन्यथा = अणगहा, सदा = सइ। प्रमुख प्राकृत अव्ययों की सूची सूचक अर्थों के साथ इस प्रकार है :—

अइ (अयि)—सम्भावना, आमन्त्रण	ऊ (दे- )—गर्हा, आक्षेप
” (अति)—सामर्थ्य, अतिशय	( प्रस्तुत वाच्य के विपरीत
अण (अन्)—निषेध, प्रतिषेध	अर्थ की आशंका से उसे
अप्पणो (आत्मन)—स्वय	उलटना) विस्मय, सूचना
अम्मो (?)—आश्चर्य	एम्फसिअ (दे०)—शीघ्र, तुरन्त
अरे (अरे)—सम्भाषण, रतिमल्ह	ओ (ओ)—वितर्क, प्रज्ञाप, सूचना,
अलाहि (अलहि)—निवारण, पर्याप्त	पश्चात्ताप, सम्बोधन, पादपूरक
अवि (अपि)—प्रश्न, अवधारण,	फि (फिल)—इस के समान
समुच्चय, सम्भाषना, विलाप	फिणो (किमिति)—क्यों
अव्वो—सूचना, दुःख, सम्भाषण,	खु (खलु)—निश्चय, सन्देह,
अपराध, विस्मय, आनन्द,	वितर्क, विस्मय, सम्भावना।
भय, खेद, विपाद, पश्चात्ताप	चिअ (एव)—अवधारण
आम (ओम्)—श्रीकृति प्रशंशक	चेअ (एव)—अवधारण
इ (इ)—पादपूरक	च (एव)—अवधारण
इर (किल)—सम्भाषना, निश्चय,	जाहे (यदा)—जिस समय
हेतु, वार्ताप्रसिद्ध अर्थ, अरुचि,	जे—पादपूरक, अवधारण
असत्य, सन्देह	जेण (येन)—लक्षणार्थक
इहरा (इतरथा)—अन्यथा	णइ—निश्चय, निषेध
उअ (उत्त)—विम्लप, वितर्क, प्रश्न,	णअर } —केवल, अनन्तर
समुच्चय, अतिशय, देहो	णअर ( न परम् )—विशेष
उअ (दे०)—सरल ऋजु	णअरि } (दे०)—केवल, अनन्तर

णवि—वैपरीत्य, निषेध  
 णाङ् ( नैव )—प्रतिषेध  
 तं ( तत् )—कारण, वाक्य उपन्यास  
 ताहे ( तदा )—उस समय  
 तेण ( तेन )—लक्षण सूचक  
 थू—निन्दा, तिरस्कार  
 दर ( दे० )—अर्घ, आधा: ईपत्  
 दु ( दुर् )—अभाव, दुष्टता, निन्दा  
 दे—संमुखीकरण, सखी को आमन्त्रण  
 पाडिककं } ( प्रत्येक )—हर एक  
 पाडिएककं }  
 पिव ( अपि+इव )—सादृश्य  
 पुणरुत्तं—वारम्बार, कृतकरण  
 बले—निश्चय, निर्धारण  
 मणे } ( मन्ये )—विमर्श  
 मण्णे }  
 माङ् ( माऽति )—नहीं  
 मामि - सखी के आमन्त्रण में  
 मिव इव  
 मोरउल्ला—व्यर्थ, मुधा  
 र—पादपूरक  
 रे ( रे )—परिहास, रतिकलह,  
 सम्भाषण, आक्षेप, तिरस्कार  
 व—इव  
 वणे—निश्चय, विकल्प, अनुकम्पा,  
 सम्भावना

विअ ( इव, एव )—इव, अवधारण  
 विव—इव  
 वेअ ( एव )—अवधारण  
 वेव्व ( दे० )—आमन्त्रण  
 वेव्वे ( दे० )—भय, वारण, विपाद,  
 आमन्त्रण  
 व्व—इव  
 सू—निन्दासूचक  
 हरे ( अरे )—आक्षेप, सम्भाषण,  
 रतिकलह  
 हला ( हला )—सखी के आमन्त्रण  
 में  
 हले ( हले )— " " "  
 हद्धि ( हा धिक् )—खेद, अनुताप  
 हन्द—'ग्रहण करो' अथे में  
 हन्दि— " विपाद, विकल्प,  
 पञ्चात्ताप, निश्चय, सत्य  
 संबोधन, उपदर्शन  
 हिर—किल  
 हु ( खलु )—निश्चय, वितर्क, संशय,  
 संभावना, विस्मय किन्तु, अपि,  
 वाक्य की शोभा ।  
 हुं ( हुम् )—दान, प्रश्न, निवारण,  
 निर्धारण, स्वीकार, हुंकार,  
 अनादर ।

## छठवाँ अध्याय

### शब्दरूप

प्राकृत में शब्द रूपों की प्रमुख विशेषताएँ—

(१) प्राकृत में व्यञ्जनान्तशब्द नहीं होते हैं। वे अन्तिम व्यञ्जन के लुप्त होने पर उससे पूर्व आने वाले स्वर की रूपावली में सम्मिलित कर लिए जाते हैं। जैसे राजन् = राय, प्रेमन् = पेम्म।

(२) लिंग की सर्वत्र रक्षा नहीं की गई है। कुछ अंश तक लिंग परिवर्तन शब्द के अन्तिम वर्ण पर निर्भर होता है। जैसे तम (न०) = तमो (पुं.)।

(३) सस्कृत की भाँति तीन वचन न होकर दो ही होते हैं, द्विवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग होता है। जैसे वृक्षौ = वच्छा।

(४) चतुर्थी विभक्ति का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है अपितु उसका अन्तर्भाव पष्ठी विभक्ति में होता है।<sup>१</sup> जैसे—दारकाय = दारअस्स।

### अकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द

#### विभक्तिप्रत्यय-परिवर्तन

विभक्ति	एकवचन		बहुवचन	
	सस्कृत	प्राकृत	सस्कृत	प्राकृत
प्रथमा	सि (सु)	डो (ओ) <sup>३</sup>	जस्	लोप <sup>४</sup>

१. देखिए पि प्रा. पारा नं. ३५५, ३५६, ३६०।

२. चतुर्थी पष्ठी ॥८।३।१३१ हे०॥

चतुर्थी के स्थान पर पष्ठी होती है।

३. अत सेडो ॥८।३।२।हे०॥

अकारान्त शब्द से परे सि (सु) आदि प्रत्यय के सि (सु) को डो (ओ) होता है।

४. जस्-शसोलुक् ॥८।३।४।हे०॥

अकारान्त शब्द से परे जस् तथा शस् का लोप होता है।

द्वितीया	अम्	म् <sup>१</sup>	शस्	लोप
तृतीया	टा	ण, णं <sup>२</sup>	भिसू	हि, हिं, हिं <sup>३</sup>
चतुर्थी	—	—	—	—
पञ्चमी	डसि	त्तो, दो(ओ), दु(उ) हि, हिन्तो, लोप <sup>४</sup>	भ्यस्	त्तो, दो(ओ), दु(उ) हि, हिन्तो, सुन्तो <sup>५</sup>
षष्ठी	डस्	स्स <sup>६</sup>	आम्	ण, णं
सप्तमी	डि	डे(ए), म्मि <sup>७</sup>	सुप्	सु, सुं
सम्बोधन	सु	ओ, लोप <sup>८</sup>	जस्	लोप <sup>९</sup>

१. अमोस्य ॥८।३।५।हे०॥

अ से परे अम् के अकार का लोप होता है ।

२. टा-आमोर्णः ॥८।३।६।हे०॥

अकारान्त शब्द से परे टा तथा षष्ठी के बहुवचन के आम् को ए होता है ।

( ण के ऊपर विकल्प से अनुस्वार के लिए देखिए व्यञ्जन सन्धि ७ )

३. भिसो हि हिं हि ॥८।३।७।हे०॥

अ से परे भिसू के स्थान पर केवल, सानुनासिक तथा सानुस्वार हि होता है

४. डसेस त्तो-दो दु-हि-हिन्तो-लुकः । ८।३।८।हे०॥

अ से परे डसि को त्तो, दो, दु, हि, हिन्तो, लोप ये ६ आदेश होते हैं ।

( दो तथा दु में दकार ग्रहण भाषान्तर ( शौरसेनी, मागधी ) के उपयोग के लिए किया गया है । हे० सूत्र ८।३।८ की वृत्ति । )

५. भ्यसस् त्तो-दो दु-हि हिन्तो सुन्तो ॥८।३।९।हे०॥

अ से परे भ्यस् के स्थान में त्तो, दो, दु, हि, हिन्तो, सुन्तो ये आदेश होते हैं ।

६. डसः स्स ॥८।३।१०।हे०॥

अ से परे डस् के स्थान पर स्स होता है ।

७. डे म्मि डे. ॥८।३।११।हे०॥

अ से परे डि को डित् एकार तथा म्मि होता है ।

८. देखिए पि. प्रा. पारा नं. ३६६ ( ब ) ।

९. देखिए पि. प्रा. पारा नं. ३७२ ।

## वच्छ ( वृच् ) शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	वच्छो	वच्छा <sup>१</sup>
द्वितीया	वच्छं	वच्छे, <sup>२</sup> वच्छा
तृतीया	वच्छेण, वच्छेणं	वच्छेहि, वच्छेहिं, <sup>३</sup> वच्छेहि <sup>३</sup>
चतुर्थी	—	—
पञ्चमी	वच्छा, वच्छतो, <sup>४</sup> वच्छाओ, वच्छाउ, वच्छाहि, वच्छाहिन्तो	वच्छतो, वच्छाओ, वच्छाउ, वच्छाहि, <sup>५</sup> वच्छेहि, वच्छाहिन्तो, वच्छेहिन्तो, वच्छासुन्तो, वच्छेसुन्तो
षष्ठी	वच्छस्स	वच्छाण, वच्छाणं
सप्तमी	वच्छे, वच्छम्मि	वच्छेसु, वच्छेसुं
सम्बोधन	वच्छ, वच्छा, वच्छो	वच्छा

१. जस् शस ऊसि त्तो दो हामि दीर्घं ॥८।३।१२।हे०॥

सुप्रोक्त प्रत्ययो के परे रहते श्र को दीर्घ होता है ।

२. टाण-शस्येव ॥८।३।१४।हे०॥

टा के आदेश ण तथा शस् परे रहते थ को एकार होता है ।

३. भिस्म्यस्सुपि ॥८।३।१५।हे०॥

भिस्, म्यस्, सुप् परे रहते अ को ए होता है ।

४. दीर्घं स्वर को संयुक्त-पञ्जन से पूर्ववर्ती होने से ह्रस्व—देखिए पृ० २ टि० ७

५. म्यसि वा ॥८।३।१३।हे०॥

म्यस् को होनेवाले आदेश परे रहते अ को विकल्प से दीर्घ होता है ।



## इकारान्त एवं उकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द

विभक्तिप्रत्यय परिवर्तन

विभक्ति	एकवचन		बहुवचन	
	संस्कृत	प्राकृत	संस्कृत	प्राकृत
प्रथमा	सि(सु)	लोप	जस्	अउ, अओ <sup>१</sup> णो <sup>२</sup> लोप, अवो <sup>३</sup> (केवल उकारान्त शब्द के लिए)
द्वितीया	अम्	म्	शस्	णो, लोप
तृतीया	टा	णा <sup>४</sup>	भिस्	हि, हिँ, हिँ
पञ्चमी	डसि	णो, <sup>५</sup> चो, दो (ओ) दु(उ)हिन्तो	भ्यस्	चो, दो(ओ), दु(उ), हिन्तो, सुन्तो
षष्ठी	डस्	णो, स्स	आम्	ण, ण
सप्तमी	डि	ग्मि	सुप्	सु, सु
सम्बोधन	सि(सु)	लोप	जस्	अउ, अओ, णो, लोप

- १ पुंसि जसो अउ अओ वा ॥८३॥२०॥हे०॥  
इ उ से परे जस को पु० में डित् घउ तथा अओ आदेश होते हैं ।
- २ जस-शसोर्णो वा ॥८३॥२२॥ हे०॥  
इ, उ से परे जस शस् को पु० में विक्ल से णो आदेश होता है ।
- ३ वोतो डवो ॥ ३२१॥हे ॥  
उदत्त से परे जस को पु० में विक्ल से डित् अओ आदेश होता है ।
- ४ टो णा ॥८३॥२४॥ हे० ।  
पु तथा नपु० में इ उ से परे टा को णा होता है ।
- ५ डसि डसो पु-नलोवे वा ॥८३॥३॥ हे०॥  
पु० तथा नपु० में वर्तमान इ, उ से परे डसि डस् को विक्ल से णो होता है ।

## गिरि शब्द के रूप

विभक्ति	एतद्यचन	बहुवचन
प्रथमा	गिरी <sup>१</sup>	गिरी, गिरिणो गिरउ,-ओ
द्वितीया	गिरि	गिरो, <sup>२</sup> गिरिणो
तृतीया	गिरिणा	गिरीहि,-हिँ, हिँ <sup>३</sup>
पञ्चमी	गिरिगो, चो, गिरोओ, -उ, हिन्तो	गिरित्तो, गिरीउ,-ओ, हिन्तो,-मुन्तो
षष्ठी	गिरिणो,-स्स	गिरीण,-णं
सप्तमी	गिरिम्मि	गिरीसु,-सु
सम्बोधन	गिरि, गिरी <sup>४</sup>	गिरी, गिरिगो, गिरउ,-ओ

## तरु शब्द के रूप

प०	तरु	तरु, तरुणो, तरउ,-ओ,-यो
द्वि०	तरुं	तरु तरुगो
तृ०	तरुणा	तरुहि,-हिँ, हिँ
पठ	तरुगो,-चो, तरुउ, ओ,-हिन्तो	तरुत्तो, तरुउ,-ओ, हिन्तो,-मुन्तो
प०	तरुगो,-स्स	तरुण, ण
स०	तरुम्मि	तरुसु,-सुं
सम्बो०	तरु, तरु	तरु, तरुणो, तरउ,-ओ,-यो

१ अवलोकिते सौ ॥८॥३॥१९॥हे ॥

नपु० को छोड़कर सि (सु) परे रहते इ, उ को दीर्घ होता है ।

२. लुप्ते शसि ॥८॥३॥१९॥हे ॥

शस् का लोप होने पर इ, उ को दीर्घ होता है ।

३. इदुतो दीर्घ ॥८॥३॥१९॥हे०॥

इकार, उकार को भिस, भ्यस, सुप् परे रहते दीर्घ होता है ।

४. ईदूतोर्हस्व ॥८॥३॥१९॥हे०॥

सम्बोधन में ईकारा त तथा ऊकारान्त शब्द को ह्रस्व होता है ।

उदाहरण—हे मामणि, हे बहु ।

## ऋकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द

ऋकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द दो भागों में विभक्त किए जाते हैं—१. विशेष्यवाचक २. विशेषणवाचक। प्रथमा तथा द्वितीया विभक्ति के एकवचन को छोड़कर दोनों प्रकार के शब्दों के अन्तिम ऋ को विकल्प से उ हो जाता है तथा उनकी रूपावली तरु शब्द की भांति होती है। विकल्पाभाव में विशेष्यवाचक तथा विशेषणवाचक शब्दों के अन्तिम ऋ को क्रमशः अर तथा आर हो जाता है तथा उनकी रूपावली वच्छ शब्द के समान होती है।

### पिउ, पिअर ( पितृ ) शब्द के रूप

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्र०	पिआ <sup>३</sup> , पिअरो	पिअरा, पिऊ, पिउणो, पिअउ,-ओ,-वो
द्वि०	पिअरं	पिअरा,-रे, पिउणो, पिऊ
तृ०	पिअरेण,-णं, पिउणा	पिअरेहि,-हिँ,-हिं, पिऊहि,-हिँ,-हिं
प०	पिअरत्तो,पिअरा,-उ,-ओ,-	पिअरत्तो, पिअराउ,-ओ,-हि,-हिन्तो, हि,-हिन्तो,पिउत्तो,पिउणो, सुन्तो, पिअरेहि,-हिन्तो,-सुन्तो,पिउ- पिऊउ-ओ,-हिन्तो
प०	पिअरस्स, पिउणो,-स्स	पिअराण,-णं, पिऊण-णं

१. ऋतामुदस्यमीसु वा ॥८।३।५४।हे०॥

सि ( सु ), अम्, वी को छोड़कर सि ( सु ) आदि प्रत्यय परे रहते ऋकारान्त शब्दों को विकल्प से उकारान्त हो जाता है।

२. (अ) आरः स्यादौ ॥८।३।४६।हे०॥

सि ( सु ) आदि परे रहते ऋ को आर आदेश होता है।

(ब) नाम्न्यरः ८।३।४७।हे०॥

संज्ञावाची ऋदन्त शब्दों के ऋ को सि ( सु ) आदि परे रहते अर आदेश होता है।

३. आ सी न वा १.८।३।५८।हे०॥

ऋदन्त को सि ( सु ) परे रहते विकल्प से आ होता है।

स० पिअरे, पिअरम्मि, पिउम्मि पिअरेसु, सुं, पिऊसु, सु  
सम्बो० पिअ<sup>१</sup>, पिअरं पिअरा, पिऊ, पिउणो, पिअउ, ओ, वो

दाउ, दायार (दाउ) शब्द के रूप तरु तथा यन्छ शब्द के समान होते हैं। प्रथमा विभक्ति के एरुवचन में पिअरा की भांति दाया तथा सम्बोधन के एरु वचन में पिअ की भांति दाय रूप होते हैं।

### आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

#### विभक्ति प्रत्यय परिवर्तन

विभक्ति	एरुवचन		बहुवचन	
	संस्कृत	प्राकृत	संस्कृत	प्राकृत
प्र०	सि (सु)	लोप	जस्	उ, ओ; <sup>३</sup> लोप
द्वि०	अम्	म्	शस्	उ, ओ, लोप
तृ०	टा	अ, इ, ए; <sup>३</sup>	भिस्	हि, हिँ, हिं
प०	डसि	अ, इ, ए, ओ, ओ उ, हिन्तो	भ्यस्	ओ, ओ, उ, हिन्तो, सुन्तो

१. श्रुतोद्वा । ८।३।३९। हे० ।  
सम्बोधन में सि ( सु ) परे रहते ऋकारान्त शब्द के अन्त स्वर को अ होता है ।
२. द्वियामुदोतौ वा । ८।३।२७। हे० ॥  
स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान सज्ञा शब्दों से परे जस् शस् के स्थान पर विकल्प से उ एर्ष ओ तथा पूर्व स्वर को दीर्घ हो जाता है ।
३. ( अ ) टा-डस्-डेरदादिदेद्वा तु डसेः । ८।३।२९। हे० ॥  
स्त्रीलिङ्ग में ङब्ध से परे टा, डस्, डि के स्थान पर अ, आ, इ तथा ए होते हैं । डसि को ये आदेश होने के साथ पूर्व स्वर को दीर्घ विकल्प से होता है ।  
( ब ) नात वान् । ८।३।३०। हे० ॥  
स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान आकारान्त शब्द से परे टा, डस्, डि, डसि को आ आदेश नहीं होता है ।

प०	डस्	अ, इ, ए	आम्	ण, ण
स०	डि	अ, इ, ए	सुप्	सु, सुं
सम्बो०	सि (सु)	लोप	जस्	उ, ओ, लोप

माला शब्द के रूप

विभक्ति	एक वचन	बहुवचन
प्र०	माला	माला, मालाउ, -ओ
द्वि०	माले	" " "
तृ०	मालाअ, -इ -ए	मालाहि, हिँ, -हिँ
प०	मालत्तो, मालाअ, -इ, ए, -ओ, - उ, हिन्तो	मालत्तो, मालाउ, -ओ, -हिन्तो, -सुन्तो
प०	मालाअ, -इ -ए	मालाण, -णं
स०	" " "	मालासु सुं
सम्बो०	माले <sup>२</sup> , माला	माला, -उ, -ओ

ईकारान्त, उकारान्त तथा ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के रूप वृद्धि शब्द की भाँति होते हैं। किन्तु ईकारान्त शब्दों के प्रथमा तथा द्वितीया विभक्ति के सि (सु), जस् तथा शस् के स्थान पर विकल्प से आ भी होता है, जैसे—गोरीआ।

### ऋकारान्त स्त्रीलिंग शब्द

मातृ आदि स्त्रीलिंग शब्दों के ऋकार को सि (सु) आदि परे रहते आ आदेश होता है। तत्पश्चात् रूपावली माला शब्द के समान होती है। माया का अर्थ माता होता है। देवी के अर्थ में मातृ शब्द के ऋ को अरा आदेश होता है। माअरा = देवी।

### नपुंसकलिंग शब्द

#### विभक्तिप्रत्यय परिवर्तन

विभक्ति	एकवचन		बहुवचन	
	संस्कृत	प्राकृत	संस्कृत	प्राकृत
प्र०	सि (सु)	म् <sup>२</sup>	जस्	णि, ईँ, इ <sup>३</sup>
द्वि०	अम्	म्	शस्	” ”
सम्बो०	सि (सु)	लोप <sup>४</sup>	जस्	” ”

शेष विभक्तियों में प्रत्यय-परिवर्तन पु० शब्द के प्रत्यय-परिवर्तन की भाँति होते हैं।

१. ईत सेधा वा ॥८॥३॥२८॥हे०॥

ईकारान्त (स्त्री०) शब्द से परे सि (सु) जस तथा शस् को विकल्प से आ आदेश होता है।

२. झीवे स्वरात् से ॥८॥३॥२९॥हे०॥

नपुं० स्वरात् शब्द से परे सि (सु) को म् होता है।

३. जस् शस ईँ इ-ण-य सप्रार्द्धोर्वा ॥८॥३॥३०॥हे०॥

नपुं० शब्द से परे जस तथा शस् को इ, इ तथा णि आदेश होते हैं तथा उससे पूर्व स्वर को दीर्घ होता है।

४. नामत्रयात्सी म ॥८॥३॥३७॥हे०॥

नपुं० में सम्बोधन व्यर्थ में सि (सु) विभक्ति प्रत्यय को म् नहीं होता है।

वण (वन) शब्द के रूप

विभक्ति	एक वचन	बहुवचन
प्र०	वणं	वणाणि, वणाई, वणाई
द्वि०	"	" " "
सम्बो०	वण	" " "

शेष रूप वच्छ शब्द के समान होते हैं ।

दहि (दधि) शब्द के रूप

प्र०	दहिं	दहीणि ई, ई
द्वि०	"	" " "
सम्बो०	दहि	" " "

शेष रूप गिरि शब्द के समान होते हैं ।

महु (मधु) शब्द के रूप

प्र०	महुं	महूणि, -ई, -ई
द्वि०	"	" " "
सम्बो०	महु	" " "

शेष रूप तरु शब्द के समान होते हैं ।

राय (राजन्) शब्द के रूप

प्र०	राया	राया, -णो, राइणो
द्वि०	रायं, राइणं	राय राया -णो, राइणो
तृ०	राइगा, रणगा, रायेग -णं	रायेहि, -हिं, -हि, राईहि, -हिं, -हि
प०	रणो, राइणो, रायत्तो, रायाउ, -ओ, -हिन्तो	रायत्तो, रायाउ, -ओ, -हिन्तो -सुन्तो राइन्तो राईउ, थो, -हिन्तो, -सुन्तो
प०	रणो, राइगो, रायस्स	राईण, -णं, रायाण, -णं
स०	राये, रायम्मि, राइम्मि	राईसु, -सुं, रायेसु, -सुं
सम्बो०	राया, राय	राया, -णो, राइणो

सर्वनाम शब्द<sup>१</sup>

## सव्य ( सर्व ) शब्द के रूप

प्र०	सव्यो	सव्वे
द्वि०	सव्वं	सव्वे, सव्वा
तृ०	सव्वेण,-णं	सव्वेहि -हिँ, -हिं
प०	सव्वत्तो, सव्वा,-उ,-ओ, हि,- हिन्तो	सव्वत्तो, सव्वाउ,-ओ, हि,-हिन्तो, सुन्तो, सव्वेहिन्तो,-सुन्तो
प०	सव्वस्स	सव्वेसिं, सव्वाण, ए
स०	सव्वस्सि,-म्मि,-हिं -त्थ	सव्वेसु,-सुं

सव्वा शब्द के रूप माला शब्द के समान होते हैं केवल पष्ठी विभक्ति के बहुवचन में सव्वेसिं रूप भी होता है। सव्य (नपुं०) शब्द के रूप प्रथमा द्वितीया विभक्ति में वण शब्द की भांति होते हैं शेष सव्य (पुं०) शब्द के समान होते हैं।

## ज ( यद् ) शब्द के रूप

## यद् = ज ( पुल्लिङ्ग )

प्र०	जो	जे
द्वि०	जं	जे, जा
तृ०	जेण,-णं, जिगा	जे हे,-हिँ, -हिं
प०	जम्हा, जत्तो, जा,-ओ,- उ, हि,-हिन्तो	जत्तो,-जाओ,-उ,-हि,-हिन्तो,-सुन्तो, जेहि, हिन्तो,-सुन्तो
प०	जस्स जास	जेसिं, जाण,-णं
स०	जाहे, जाला, जइआ, जहि,-म्मि,-स्सि, त्थ	जेसु, सुं

१. सर्वनाम शब्दों की विस्तृत रूपावलि के लिए देखिए हेमचन्द्र कृत एघ डां. पी एन वैद्य द्वारा सम्पादित प्राकृत-व्याकरण ८१३, ९८ सूत्र से ८१३।११७ सूत्र तक।



यद् = जी, जा (स्त्रीलिंग)

प्र०	जा	जी,-उ,-आ,-ओ, जा,-उ,-ओ
द्वि०	जं	” ”
तृ०	जीअ,-आ,-इ,-ए, जाअ,-इ,-ए,	जीहि,-हिँ,-हि, जाहि,-हिँ,-हिँ,
प०	जित्तो, जीअ,-आ,-इ,-ए, ओ, उ,-हिन्तो, जा,-अ,-इ,- ए, जम्हा, जत्तो, जाओ,-उ,-हिन्तो,	जत्तो, जाओ,-उ,-हिन्तो,-सुन्तो, जित्तो, जीओ,-उ,-हिन्तो,-सुन्तो,
प०	जिस्ता, जीसे, जीअ- आ, इ,-ए, जाअ,-इ,-ए,	जेसिं, जाण,-णं
स०	जीअ,-आ,-इ,-ए, जाअ,-इ,-ए, जीसु,-सुं, जासु,-सुं	

यद् = ज (नपुंसकलिंग)

प्र०	जं	जाणि,-ईँ,-ईँ
द्वि०	”	”

शेष रूप पुलिङ्ग शब्द के समान होते हैं ।

तीनों लिङ्गों में समान--युष्मद् शब्द के रूप

प्र०	तुं तुम, तुवं, तुह	तुम्हे, तुम्ह
द्वि०	”	” वो
तृ०	तए, तुमे	तुम्हेहिं, तुम्हेहिं
प०	तुमाओ, तुमार्हितो, तुम्ह	तुम्हत्तो, तुम्हत्तो
प०	तुव, तुह, ते, तुम्ह, तुम्ह	तुम्हाण-णं
स०	तुमे, तुमम्मि, तुहम्मि	तुमसु, तुम्हेसु, तुम्हासु

## तीनों लिङ्गों समान-अस्मद् शब्द के रूप

प्र०	अहं, हं	अम्हे
द्वि०	ममं, मं	अम्हे
तृ०	मइ, मए	अम्हेहि
प०	ममत्तो, ममाओ, मज्जत्तो	अम्हत्तो, अम्हाहित्तो, ममाहित्तो
प०	अम्ह, मज्ज, मम,	अम्हाण,-णं, ममाण,-णं
स०	अम्हम्मि	अम्हेसु, अम्हासु, ममसु

## संख्या-शब्द

प्राकृत बोलियों में एक के लिए प्रायः एकरू का प्रयोग होता है। स्त्रीलिंग में एकरू रूप है। इनकी रूपावली क्रमशः सव्व तथा सव्वा की भाँति होती है। द्वि, त्रि, चतुर, पञ्चन, पप्, सप्तन आदि को प्राकृत के तीनों लिङ्गों में क्रमशः दु, ति, चउ, पंच, छ, सत्त आदि हो जाते हैं। इनके रूप बहुवचन में ही चलते हैं।

## दु (द्वि) शब्द के रूप

## ति (त्रि) शब्द के रूप

प्र०, द्वि०	दुवे, दोण्णि	तिण्णि
तृ०	दोहि, हिँ, -हि	तीहि, हिँ, -हि
प०	दुत्तो, दोओ, न, -हित्तो, -सुन्तो	तित्तो, तीओ, -उ, -हित्तो, -सुन्तो
प०	दोण्हं, दुण्ह	तिण्ह, तिण्हं
स०	दोसु, -सुं	तीसु, सुं

## चउ (चतुर) शब्द के रूप

## पंच (पञ्चन) शब्द के रूप

प्र०, द्वि०	चत्तारो, चउरो, चत्तारि	पंच
तृ०	चऊहि, -हिँ, -हि	पंचेहि, -हिँ, -हि
प०	चउत्तो, चऊओ आदि	पंचत्तो, पंचाओ...आदि
प०	चउण्ह, -हं	पंचण्ह, -हं
स०	चऊसु, -सुं	पंचसु, -सुं

इसी प्रकार अन्य संख्यावाचक शब्दों के रूप होते हैं।

## सातवाँ अध्याय

### धातुरूप

प्राकृत धातुरूपों की प्रमुख विशेषताएँ—

- १—शब्दरूपों की भाँति द्विवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग ।  
हसत = हसन्ति, अनुभजत = अणुहोति ।
- २—अ विकरण जोड़कर व्यञ्जान्त धातु का स्वरान्त धातु में परिवर्तन ।  
हस् = हस भण् = भण ।
- ३—भ्वादिगण के धातुरूपों की ओर अन्य गणों के धातुरूपों का झुकाव ।  
वनोति = वणइ, रूप्यति = रूसइ ।
- ४—प्रायः परस्मैपद का प्रयोग ।  
लप्स्यते = लहिस्सइ, सहे = सहेमि गम्यते = गच्छीअदि आदि ।
- ५—काल की दृष्टि से वर्तमान काल (लट लृट्) भूतकाल (लिट् आदि), भविष्यत् काल (लृट्) तथा अन्य तीन प्रकारों—  
आज्ञार्थक (लोट्), विध्यर्थक (विधि लिङ्) एवं क्रियातिपत्ति (लृङ्)—में धातुरूपावली दृष्टिगोचर होती है । आज्ञार्थक एवं विध्यर्थक रूपावली प्रायः समान होती है ।
- ६—भूत काल के लिए प्रायः सहायक क्रियाओं के साथ कृदन्त रूपों को व्यवहार में लाया जाता है ।  
जैसे—वहन्तो आसि ।

## कर्तृवाच्य

वर्तमानकाल

धातु-प्रत्यय

पुरुष	एकवचन		बहुवचन	
	संस्कृत	प्राकृत	संस्कृत	प्राकृत
प्रथम	तिप्, त	इ, ए <sup>१</sup>	झि, झ	न्ति, न्ते, इरे <sup>२</sup>
मध्यम	सिप्, थास्	सि, से <sup>३</sup>	थ, ध्वम्	इत्था, ह <sup>४</sup>
उत्तम	मिप्, इट्	मि <sup>५</sup>	मस्, महिङ्	मो, मु, म <sup>६</sup>

## हस धातु के रूप

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	हसइ, हसए	हसन्ति, हसन्ते, हसिरे
मध्यम „	हससि, हससे	हसिस्था, हसह
उत्तम „	हसामि, हसमि	हसिमो, -मु, -म, हसामो, -मु, -म, हसमो, -मु, म

१. एयादीनामाचत्रयस्याद्यस्येवेचौ ॥८।३।१३९।हे०॥  
त्यादि विभक्तियों के आदि त्रय ( प्रथम पुरुष ) के आदि ( एकवचन ) के प्रत्यय ( तिप्, त ) के स्थान में इच ( इ ) एच् ( ए ) होते हैं ।
२. बहुवचनस्य ति न्ते इरे ॥८।३।१४०।हे०॥  
प्रथम पुरुष बहुवचन ( झि, झ ) को न्ति, न्ते, इरे होते हैं ।
३. द्वितीयस्य सि से ॥८।३।१४०।हे०॥  
मध्यम पुरुष के एकवचन ( सिप्, थास् ) को सि, से होते हैं ।
४. मध्यमपुरुषस्य-हचौ ॥८।३।१४३।हे०॥  
मध्यमपुरुष बहुवचन ( थ, ध्वम् ) को इत्था, ह होते हैं ।
५. तृतीयस्य मि ॥८।३।१४१।हे०॥  
उत्तमपुरुष के एकवचन ( मिप्, इट् ) को मि होता है ।
६. तृतीयस्य मो मु मा ॥८।३।१४४।हे०॥  
उत्तमपुरुष के बहुवचन ( मस्, महिङ् ) को मो, मु, म होते हैं ।
७. मो वा ॥८।३।१४५।हे०॥  
अदत्त धातु के घ को मि परे रहते निम्न ये आ होता है ।
८. इच मो-मु मे वा ॥८।३।१४६।हे०॥  
अदत्त धातु के अ को मो-मु म परे रहते निम्न ये इ तथा मा होते हैं ।

अदन्त धातु के अकार को वर्तमान काल परे रहते विकल्प से एकार होता है। तत्र हसेइ हसेसि आदि रूप होते हैं।<sup>१</sup>

हो ( भू ) धातु के रूप

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	होइ <sup>२</sup>	होन्ति, होन्ते, होइरे
मध्यम पु०	होसि	होइत्या, होइ
उत्तम ,,	होमि	होमो,-मु, म

भूतकाल

धातु प्रत्यय

सी ही हीअ (केवल स्वरान्त धातु को)<sup>३</sup>

ईअ (केवल व्यञ्जनान्त धातु को)<sup>४</sup>

हो ( भू ) धातु के रूप

प्रथम पुरुष एरु वचन—होसी, होही तथा होहीअ ।

१ वर्तमाना-पञ्चमी शतृप् वा ॥८१३।१९८।हे०॥

वर्तमानकाल, पञ्चमी विभक्ति तथा शतृ प्रत्यय परे रहते अ को विकल्प से ए होता है ।

२. अत एवैच् से ॥८१३।१४९।हे०॥

अकारान्त धातु से परे ही एच् तथा से आदेश होते हैं ।

३. सी ही हीअ भूतार्थस्य ॥८१३।१६२।हे०॥

स्वरात् धातुओ से भूतार्थ में विहित प्रत्यय को सी, ही, हीअ आदेश होते हैं ।

४ (अ) व्यञ्जनादीअ ॥८१३।१६३।हे०॥

व्यञ्जान्त धातुओ से भूतार्थ में विहित प्रत्यय को ईअ आदेश होता है ।

(ब) उक्त प्रत्यय प्रथमपुरुष एक वचन के प्रतीत होते हैं क्योंकि हमें साहित्य में प्रथमपुरुष बहुवचन के लिए इसु अंसु प्रत्यय पाते हैं । जैसे गच्छिसु, गच्छंसु । देखिए डा पी एल वैद्य द्वारा सम्पादित हेमचन्द्र कृत प्राकृत व्याकरण की टिप्पणी पृ २४ ।

## हस धातु के रूप

प्रथम पुरुष एक वचन—हसीअ ।

भविष्यत्काल

धातु-प्रत्यय

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
प्रथम	हिइ, <sup>१</sup> हिए	हिन्ति, हिन्ते, हिइरे
मध्यम	हिसि, हिसे	हित्था, हिह
उत्तम	स्सं <sup>२</sup> , स्सामि <sup>३</sup> , हामि हिमि	स्सामो-मु, म, हामो,-मु,-म, हिमो,-मु,-म हिस्सा, हित्था <sup>४</sup>

## हस् धातु के रूप

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
प्रथम	हसिहिइ, <sup>१</sup> -ए,	हसिहित्ति,-न्ते,-रे
मध्यम	हसिहिसि,-से	हसिहित्था,-ह,
उत्तम	हसिस्सं, हसिस्सामि हसिहामि, हसिहिमि	हसिस्सामो-मु, म,-हसिहामो,-मु,-म, हसिहिमो, मु,-म, हसिहित्था,-स्सा

१. भविष्यति हिरादिः ॥८॥३॥१६६॥हे०॥

भविष्यत् अर्थ में विहित प्रत्यय के पूर्व हि का प्रयोग होता है ।

२. मे. स्स ॥८॥३॥१६९॥हे०॥

धातु से परे भविष्यत् काल में आदेश मि के स्थान पर विकल्प से स्स का प्रयोग होता है ।

३. मि-मो-मु-मे स्सा हा न वा । ८॥३॥१६७॥हे०॥

भविष्यत् अर्थ में मि, मो, मु, म परे रहते उनके पूर्व स्सा तथा हा विकल्प से होते हैं ।

४. मो मु-भाना हिस्सा हित्था ॥८॥३॥१६८॥हे०॥

भविष्यत् काल में धातु से परे मो, मु, म को विकल्प से हिस्सा, हित्था-आदेश होते हैं ।

५. एष क्त्वा-तुम्-तव्य-भविष्यत्सु ॥८॥३॥१६७॥हे०॥

क्त्वा, तुम्, तव्य तथा भविष्यत् काल में विहित प्रत्यय परे रहते थ को इ तथा ए होते हैं ।

पक्ष में हस के सकारवर्ती अ को ए हो जाता है और फिर रूप हसेहिइ, हसेहिसि, इस तरह चलते हैं ।

### हो ( भू ) धातु के रूप

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पु०	होहिइ	होहिन्ति, होहिन्ते, होहिरे
मध्यम पु०	होहिसि	होहित्या, होहिह
उत्तम पु०	होस्सं, होस्सामि	होस्सामो,-मु, म, होहामो,-मु,-म,
-	होहामि, होहिमि	होहिमो, मु,-म, होहिस्सा, होहित्या

### विध्यर्थक तथा आज्ञाथेक

#### धातु प्रत्यय

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
प्रथम	उ <sup>१</sup>	न्तु <sup>२</sup>
मध्यम	लुक्, सु, इज्जसु, इज्जहि, इज्जे <sup>३</sup> , हि <sup>४</sup>	ह
उत्तम	मु	मो

१. दु सु मु विध्यादिष्वेकस्मिन्त्रयाणाम् ॥८१३१७३॥हे ॥  
विध्यादि अर्थ में तीनों पुरुषों के एकवचन के प्रत्ययों को क्रमशः दु सु मु होते हैं ।
२. बहुषु न्तु ह मो ॥८ ३, १७६॥हे०॥  
विध्यादि अर्थ में तीनों पुरुषों के बहुवचन के प्रत्ययों को क्रमशः न्तु ह मो, होते हैं ।
३. अत इज्जत्विज्जहीज्जे लुको वा ॥८१३१७५॥हे०॥  
अ से परे सु को विकल्प से इज्जमु, इज्जहि, इज्जे होते हैं अथवा सु का लोप होता है ।
४. सोहिर्वा ॥८१३ १७४॥हे० ।  
पूर्वमूषविहित सु को विकल्प से हि होता है ।

## हस धातु के रूप

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमपु०	हसउ	हसन्तु
मध्यम पु०	हस, हससु, हसहि हसेज्जसु, हसेज्जहि, हसेज्जे	हसह
उत्तम पु०	हसामु, हसिमु, हसमु	हसामो, हसमो, हसिमो

पक्ष मे सर्व पुरुष सर्व वचन मे—हसेज्ज हसेज्जा ।<sup>१</sup>

## हो ( भू ) धातु के रूप

	एक वचन	बहुवचन
प्रथम पु०	होउ	होन्तु
मध्यम पु०	होहि, होसु	होह
उत्तम पु०	होमु	होमो

## क्रियातिपत्ति

## धातु-प्रत्यय

सभी पुरुषों तथा सभी वचनों में—ज्ज, ज्जा, न्त, माण<sup>२</sup>

## हस धातु के रूप

सभी पुरुषों तथा सभी वचनों मे—हसेज्ज, हसेज्जा, हसन्तो,  
हसमाणो ।

१ वर्तमाना-भविष्यत्प्रत्ययौ ज्ज ज्जा वा ८।३।१७७।हे०॥

वर्तमान, भविष्यत् तथा विद्यादि अर्थ में विहित प्रत्ययों को ज्ज तथा ज्जा होते हैं ।

२. ( अ ) क्रियातिपत्ते ८।३।१७९।हे ॥

क्रियातिपत्ति में प्रत्ययों को ज्ज, ज्जा होते हैं ।

( ब ) न्त माणो ८।३।१८०।हे०॥

क्रियातिपत्ति में प्रत्ययों को न्त, माण आदेश होते हैं ।



हो ( भू ) धातु के रूप

सभी पुरुषों तथा वचनों में—होज्ज, होज्जा, होन्तो, होमाणो ।

अनियमित-धातुरूप

अस धातु

वर्तमानकाल

	एकवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अत्थि	अत्थि
म० पु०	अत्थि, सि	अत्थि
उ० पु०	अत्थि, म्हि	अत्थि, म्हो, म्ह,

भूतकाल

सभी पुरुषों तथा सभी वचनों में—आसि, अहेसि ।

भविष्यत्काल विध्यर्थक तथा आज्ञार्थक

सभी पुरुषों तथा सभी वचनों में—अत्थि ।

प्रेरणार्थक ( णिजन्त ) रूप

धातु से प्रेरणार्थक क्रिया रूप बनाने के लिए णि के स्थान पर अ, ए, आय, आवे—ये चार आदेश होते हैं । जैसे—हासइ, हासेइ, हसावइ, हसावेइ ।

कर्म तथा भाववाच्य

वर्तमानकाल, भूतकाल, विध्यर्थक एवं आज्ञार्थक में कर्म तथा भाववाच्य रूपों के लिए तत् तद् धातु-प्रत्ययों के पूर्व ईअ तथा इज्ज प्रत्यय जोड़े जाते हैं । जैसे—हसीअइ, हसिज्जइ आदि । भविष्यत् काल एवं क्रियातिपत्ति में कर्म तथा भाववाच्य के रूप कर्तृ वाच्य के समान होते हैं ।

प्रेरणार्थक ( णिजन्त ) रूप

मूल धातु में आवि प्रत्यय जोड़ने या तद्गत अन्तिमें अँ को आ कर देने के बाद कर्म तथा भाववाच्य के प्रत्यय ईअ एवं इज्ज जोड़ने से प्रेरणार्थक कर्म तथा भाववाच्य के रूप बनते हैं ।

जैसे—हसावीअइ, हसाविज्जइ, हासीअइ, हासिज्जइ आदि ।

# आठवाँ अध्याय

## कारक

प्राकृत में कारकसम्बन्धी नियम कुछ विशेषताओं को छोड़कर संस्कृत के समान हैं। विशेषताएँ निम्न हैं —

(१) द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी तथा सप्तमी विभक्ति के स्थान पर कहीं-कहीं पष्ठी विभक्ति होती है।<sup>१</sup>

सीमावरं वन्दे = सीमाधरस्स वन्दे ।

धनेन लब्धः = धणस्स लब्धो ।

चोराद्विभेति = चोरस्स वीहइ ।

पृष्ठे केशभार = पिट्ठीए केशभारो ।

(२) द्वितीया तथा तृतीया विभक्ति के स्थान पर कहीं-कहीं सप्तमी विभक्ति होती है।<sup>२</sup>

ग्रामं वसामि = गामे वसामि ।

तैरलंकृता पृथ्वी = तेसु अलंकिआ पुहवी ।

(३) पञ्चमी विभक्ति के समान पर कहीं-कहीं तृतीया तथा सप्तमी विभक्ति होती है।<sup>३</sup>

चोराद्विभेति = चोरेण वीहइ ।

अन्त'पुराद् रन्त्यागतो राजा = अन्तेउरे रमिउमागओ राया ।

(४) सप्तमी विभक्ति के स्थान पर कहीं-कहीं द्वितीया विभक्ति होती है।<sup>४</sup>

विद्युदुद्योते स्मरति रात्रिम् = विज्जुज्जोयं भरइ रत्ति ।

(५) अर्धमागधी प्राकृत में सप्तमी विभक्ति की जगह तृतीया विभक्ति भी देखी जाती है।<sup>५</sup>

तस्मिन् काले तस्मिन् समये = तेणं कालेणं तेणं समण्णं ।

१. क्वचिद् द्वितीयादेः ॥८॥३॥१३४ हे०॥

२. द्वितीया-तृतीयायोः सप्तमी ॥१॥३॥१३५ हे०॥

३. पञ्चम्यास्तृतीया य ॥८॥३॥३६ हे०॥

४. सप्तम्या द्वितीया ॥८॥३॥३७ हे०॥

५. आपे तृतीयापि हरयने ( हे० सूत्र ८३॥३७ की वृत्ति ) ।

## नवाँ अध्याय

### समास

समास का प्राकृत वैयाकरणों ने अलग से कोई उल्लेख नहीं किया है। अतः समास की दृष्टि से प्राकृत में संस्कृत से कोई अन्तर नहीं है। यथा—

अव्ययीभाव समास—

गुरुणो समीपं = उवगुरु ( समीप अर्थ मे )

जिणस्स पच्छा = अणुजिणं ( पश्चात् अर्थ में ) । आदि ।

तत्पुरुष समास—

पुढ्वं कायस्स = पुढ्व ऋयो ( प्रथमा तत्पुरुष )

भदं पत्तो = भदपत्तो ( द्वितीया तत्पुरुष )

गुणेहिं संपन्नो = गुणसंपन्नो ( तृतीयो तत्पुरुष )

लोगस्स सुहो = लोगसुहो ( चतुर्थी तत्पुरुष )

चोराओ भयं = चोरभय ( पञ्चमी तत्पुरुष )

देवस्स इन्दो = देविन्दो ( षष्ठी तत्पुरुष )

कलासु कुसलो = कलाकुसलो ( सप्तमी तत्पुरुष )

न विरई = अचिरई ( नन्तत्पुरुष ) । आदि ।

कर्मधारय समास—

महन्तो सो वीरो = महावीरो ( विशेषणपूर्वपद )

कुमारी अ सा गन्धिणी = कुमारगन्धिणी ( विशेष्यपूर्वपद )

चंदो इव मुहं = चन्दमुहं ( उपमानपूर्वपद )

मुहं चंदो व्व = मुहचन्दो ( उपमानोत्तरपद ) । आदि ।

द्विगु समास—

नरुहं तत्ताणं समाहारो = नवतत्तं ( एरुवद्भावी )

तिणिण लोया = तिलोया ( अनेकवद्भावी )

द्वन्द्व समास—

देवा अ देवीओ अ = देवदेवीओ ( इतरेतरद्वन्द्व )

तवो अ संजमो अ एएसि समाहारो = तवसंजमं ( समाहारद्वन्द्व )

मात्रा य पिष्ठा य त्ति = पिअरा ( एकशेषद्वन्द्व )

बहुव्रीहि समास—

पीअ अवर जस्स सो = पीअवरो ( समानाधिकरण )

णीलो कण्ठो जस्स सो = णीलकण्ठो ( विशेषणपूर्वपद )

चन्दो इव मुह जाए = चन्दमुही ( उपमानपूर्वपद )

धुओ सव्वो किलेसो जस्स सो = धुअसव्वकिलेसो ( बहुपद )

न अत्थि भयं जस्स सो = अभयो ( नञ ) । आदि ।

# दशवाँ अध्याय

## कृतप्रत्यय

### वर्तमानकृदन्त

- (१) संस्कृतप्रत्यय शतृ, शानच् के स्थान पर धातु में न्त, माण प्रत्यय जोड़ने पर वर्तमान कृदन्त के रूप बनते हैं। खीलिङ्ग में न्त एवं माण के साथ ई प्रत्यय भी जुड़वा है।
- (२) न्त, माण तथा ई प्रत्यय के पूर्ववर्ती अ को विकल्प से ए हो जाता है।

कर्तृवाच्य वर्तमानकृदन्त—

पुं०	नपुं०	स्त्री०
	हस धातु	
हसन्तो, हसमाणो	हसन्तं, हसमाणं	हसन्ता, -न्ती, हसेन्ता, -न्ती, हसमाणा, -णी,
हसेन्तो, हसेमाणो	हसेन्तं, हसेमाणं	हसेमाणा, -णी, हसेई, हसेई

### हो (भू) धातु

होन्तो, होमाणो	होन्तं, होमाणं	होन्ता-न्ती, होमाणा, -णी, होई
----------------	----------------	----------------------------------

कर्मवाच्य वर्तमानकृदन्त—

हसीअन्तो, हसीअमाणो	हसीअन्तं, हसीअमाणं	हसीअन्ता, -न्ती, हसीअमाणा, -णी
--------------------	--------------------	-----------------------------------

१. शतान्तः ॥८१३॥१८१ हे०।

शतृ तथा आनश् ( शानच् ) को न्त एवं माण भादेश होते हैं।

२. ई च द्विषाम् ॥८१३॥१८२ हे०।

खीलिङ्ग में शतृ तथा आनश् ( शानच् ) को ई होता है। चकार से न्त एवं माण प्रत्यय भी होते हैं।

हसिञ्जन्तो, हसिञ्जमाणो हसिञ्जन्त, हसिञ्जमाण हसिञ्जन्ता, न्ती,  
हसिञ्जमाणा, णी,  
हसीअई, हसिञ्जई, आदि

कर्तृवाच्य प्रेरणार्थक वर्तमानकृदन्त—

हस धातु (पु०)—हासन्तो हासेन्तो, हासमाणो, हासेमाणो, हसावन्तो,  
हसावेन्तो, हसावमाणो, हसावेमाणो ।

कर्मवाच्य प्रेरणार्थक वर्तमानकृदन्त—

हस धातु (पु०)—हासीअन्तो, हासीअमाणो, हासिञ्जन्तो, हासिञ्जमाणो,  
हसावीअन्तो हसावीअमाणो, हसाविञ्जन्तो,  
हसाविञ्जमाणो ।

### भूतकृदन्त

(१) सस्कृत क्त के स्थान पर प्राकृत मे त, द और अ प्रत्यय जोड़ने से भूतकृदन्त के रूप बनते हैं ।

(२) त, द अ प्रत्यय के पूर्ववर्ती अ को इ हो जाता है ।

कर्तृवाच्य भूतकृदन्त—

गम + त, द, अ = गमितो, गमिदो, गमिओ (गत ) ।

चल + त द, अ = चलिनो, चलिदो, चलिओ (चलिन ) । आदि ।

कर्मवाच्य भूतकृदन्त—

कर + त, द अ = करितो, करिदो, करिओ (कृत ) ।

पठ + त द, अ = पठितो, पठिदो, पठिओ (पठित ) । आदि ।

प्रेरणार्थक (ईणञन्) भूतकृदन्त—

हस धातु (नपु०)—हसावित, हसाविद, हसाविअ ,

हासित, हासिद, हासिअ ( हासितम् ) ।

सस्कृत सिद्ध शब्दों से निर्मित भूतकृदन्त—

गतम् = गअ

कृतम् = कअ

मृतम् = मअ

जितम् = जिअ

पिहितम् = पिहिअ

आदि ।

## भविष्यत्कृदन्त

धातु में स्सन्व, स्समाण, स्सई प्रत्यय जोड़ने पर भविष्यत्कृदन्त के रूप बनते हैं<sup>१</sup> स्सई प्रत्यय केवल स्त्रीलिङ्ग में जुड़ता है।  
 हस (पु०)—हसिस्सन्नो, हसिस्समाणो ( हसिष्यत्, हसिष्यमाण )।  
 (स्त्री०)—हसिस्सई ( हसिष्यन्ती ) आदि।

## हेत्वर्थककृदन्त

- (१) सस्कृत तुम् प्रत्यय के स्थान पर धातु में तु, दु, उ तथा त्तए प्रत्यय लगाने पर हेत्वर्थक कृदन्त के रूप बनते हैं। त्तए प्रत्यय का प्रयोग अर्धमागधी में सबसे ज्यादा होता है।<sup>२</sup>
- (२) तुं, दु, उ एव त्तए प्रत्ययों के पूर्ववर्ती अ को इ तथा ए हो जाते हैं।  
 हस + तु, दु, उ = हसितु, हसेतु, हसिदु, हसेदु, हसिउ, हसेउ ( हसितु )।  
 कर + त्तए = करेत्तए, करित्तए ( कर्तु )।

## सम्बन्धसूचक भूतकृदन्त

- (१) सस्कृत क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय के स्थान पर धातु में तु, अ, वृण, तुञ्जाण, इत्ता, इत्ताण, आय, आए प्रत्यय लगाने पर सम्बन्धसूचक भूतकृदन्त के रूप बनते हैं।<sup>३</sup>
- (२) सम्बन्धसूचक भूतकृदन्त के प्रत्ययों के ण पर विभल्प से अनुस्वार हो जाता है।

१. वर्तमानकालीन कृदन्त प्रत्ययों के पूर्व हस जोड़ने से भविष्यत्कालीन कृदन्त के प्रत्यय बनते हैं।

२. देविए वि० प्रा० पारा नं० ६०८।

३. तुमाण इता इत्ताण आय तथा घ्राए प्रत्ययों का प्रयोग प्रायः अर्धमागधी में दृष्टिगोचर होता है। ( देविए वि० प्रा० पारा नं० ६८३, ६६३ )।

(३) सम्बन्धसूचक-भूतकृदन्त के प्रत्ययों के पूर्ववर्ती अ को प्रयोगानुसार इ और ए आदेश होते हैं ।

हस + तुं = हसिउं, हसेउं ( हसित्वा )

हस + अ = हसिअ, हसेअ ( हसित्वा )

हस + तूण = हसिऊण-णं, हसेऊण-णं ( हसित्वा )

हस + तुआण = हसिउआण-णं, हसेउआण-णं ( हसित्वा )

कर + इत्ता = करित्ता ( कृत्वा )

कर + इत्ताण = करित्ताण, करित्ताणं ( कृत्वा )

गह + आय = गहाय ( गृहीत्वा )

आया + आप = आयाए ( आदाय )

### विध्यर्थककृदन्त

- (१) धातु में तव्व, अणिज्ज तथा अणीअ प्रत्यय लगाने से विध्यर्थक-कृदन्त के रूप बनते हैं ।
- (२) संस्कृत के विध्यर्थक यत् प्रत्यय को प्राकृत में ज्ञ हो जाता है ।
- (३) तव्व प्रत्यय के पूर्ववर्ती अ को इ तथा ए हो जाते हैं ।

हस + तव्व = हसिअव्वं, हसेअव्वं, हसितव्वं, हसेतव्वं ( हसितव्यम् )

हस + अणिज्ज, अणीअ = हसणिज्जं, हसणीअं ( हसनीयम् )

कर + अणिज्ज, अणीअ = करणिज्जं, करणीअं ( करणीयं )

कर + ज्ञ = कज्जं ( कार्यं ) । इसी तरह वज्जं ( वज्यम् ) ।

### कर्तृसूचक-कृदन्त

धातु में इर प्रत्यय लगाने पर कर्तृसूचक कृदन्त के रूप बनने हैं ।

हस + इर = हसिरो ( हसनशील' पुरप' )

हसिरा ( हसनशीला स्त्री )

त्तर + इर = तुरिरो । इत्यादि ।



## ग्यारहवाँ अध्याय

### तद्धितप्रत्यय

अण् > एच्चय, योष्मारुम् = तुम्हेच्चय, आस्मारुम् = अम्हेच्चयं<sup>१</sup>

कन् > अ, चन्द्रक = चदओ, चन्दो, बहुकम् = बहुअयं, बहुअं<sup>२</sup>

इल्ल, पल्लयक = पल्लविल्लो, पल्लयो ।

उल्ल, पितृक = पिउल्लो, पिआ, हस्तक = हस्थुल्लो, हस्त्यो ।

ल्लो, एरुक = एरुल्लो, एरुको, नयक = नयल्लो, नयो<sup>३</sup>

शृत्तम् > हुत्त शतकृत्य = सयहुत्त, सहस्रकृत्य = सहस्सहुत्त<sup>४</sup>

स > इक्, सर्वाङ्गीण = सञ्जङ्गिओ<sup>५</sup>

भगार्थक प्रत्यय > इल्ल, गामोणम् = गामिल्ल, गृणीरी = गुरिल्ला<sup>६</sup> ।

उल्ल, आत्मनि भयम् = अत्पुल्ल ।

१. पुष्पदत्तमदोत्र एष्य ॥८।२।१४९।हे०॥

पुष्पद एवं अत्मद शब्द से हृदमर्थक अ ( अण्, पा० ) को एष्य होता है ।

२. स्वार्थे ष्य पा ॥८।२।१६४।हे०॥

स्वार्थ में विचल्य से ष तथा इत्, इल्ल, उल्ल प्रत्यय होते हैं ।

३. ल्लो नयेणाडा ॥८।२।१६५।हे०॥

नय तथा एक् शब्द को स्वार्थ में ल्लो विचल्य से होता है ।

४. शृत्तयो हुत्त ॥८।२।१६८।हे०॥

शृत्तम् ( शृत्तगुप् ) प्रत्यय को हुत्त आदेश होता है ।

५. सर्वाङ्गादीनस्वेण ॥८।२।१६१।हे०॥

सर्वाङ्ग शब्द से ईन ( स ) को ङ्ग होता है ।

६. विल्ल तुल्लो भये ॥८।२।१६३।हे०॥

भवार्थ में शब्द से परे विल्ल उल्ल प्रत्यय होते हैं ।

छ > ण्य, आत्मीयम् = अप्पण्यं ।<sup>१</sup>

केर, युष्मदीय = तुम्हकेरो, अस्मदीय = अम्हकेरो ।<sup>२</sup>

क्क, परकीयम् = पारक्कं, पारकेरं ।<sup>३</sup>

इक्क, राजकीयम् = राइक्कं, रायकेरं ।

ण > इकट्, पान्थः = पहिओ ।<sup>४</sup>

तसिल् > त्तो, दो; सर्वत. = सब्यत्तो, सब्यदो, सब्यओ, यतः = जत्तो, जदो, जओ ।<sup>५</sup>

तेलच् > एल्ल, कट्टुतैलं = कडुएल्लं ।<sup>६</sup>

त्रल् > हि, ह, त्थ; यत्र = जहि, जह, जत्थ; तत्र = तहि तह, तत्थ ।<sup>७</sup>

त्व > डिमा, त्तण; पीनत्तम् = पीणिमा पीणत्तणं ।<sup>८</sup>

दा > सि, सिअ, इआ; एकदा = एककसि, एककसिअं, एककइआ एगया ।<sup>९</sup>

१. ईयस्यात्मनो णयः ॥८२११६३॥हे०॥

आत्मन् शब्द से परे ईय ( छ ) को णय भादेश होता है ।

२. इदमर्थस्य केरः ॥८२११४७॥हे०॥

इदमर्थक प्रत्यय को केर आदेश होता है ।

३. पर-राजर्ष्या क-डिकी च ॥८२११४८॥हे०॥

पर, राजन् शब्द से परे इदमर्थक प्रत्यय को क्रमशः डित् क एवं इक्क होते हैं ।

४. पयो णस्येकट् ॥८२११६२॥हे०॥

पय शब्द से होने वाले ण को इकट् आदेश होता है ।

५. त्तो दो त्तसो वा ॥८२११६०॥हे०॥

त्तस (तसिल्) प्रत्यय के स्थान पर त्रिवल्य से त्तो और दो आदेश होते हैं ।

६. अन्नद्धोठात्तैलस्य डेल्ल ॥८२११५६॥हे०॥

धक्कोठ वजित शब्द से परे तैल ( तैलच् ) प्रत्यय को डेल्ल भादेश होता है ।

७. त्रपो हि ह-त्त्याः ॥८२११६१॥हे०॥

त्रप् ( त्रल् ) प्रत्यय को त्रिवल्य से हि, ह, त्थ भादेश होते हैं ।

८. त्वस्य डिमा-त्तणो वा ॥८२११५४॥हे०॥

त्व प्रत्यय को त्रिवल्य से डिमा तथा त्तण भादेश होते हैं ।

९. चेवाद्. सि सिअं इमा ॥८२११६२॥हे०॥

एव शब्द से परे दा को त्रिवल्य से सि, सिअ तथा इआ आदेश होते हैं ।

मतुप > आलु ईर्ष्यावान् = ईसालू, लज्जावान् = लज्जालू ।  
 इल्ल, शोभावान् = सोहिल्लो, द्यायावान् = द्याइल्लो ।  
 उल्ल, विचारवान् = विश्रारुल्लो, दर्पवान् = दप्पुल्लो ।  
 आल, रसवान् = रसालो, जटावान् = जडालो ।  
 वन्त, धनवान् = धणवन्तो, भक्तिमान् = भक्तिवन्तो ।  
 मन्त, हनुमान् = हणुमन्तो, श्रीमान् = सिरिमन्तो ।  
 इत्त, काव्यवान् = कव्यइत्तो, मानवान् = माणइत्तो ।  
 इर गर्ववान् = गव्विरो, रेखावान् = रेहिरो ।  
 मण, धनवान् = धणमणो, शोभावान् = सोहामणो ।

घति > व्य मधुवत् = महुव्य, मथुरावत् = महुरव्य ।<sup>२</sup>  
 परिमाणा- | > इत्तिअ, यावत् = जित्तिअं, तावत् = तित्तिअं, एतावत् = इत्तिअं<sup>३</sup>  
 र्थक प्रत्यय | इत्तिअ, इयत् = एत्तिअं, कियत् = केत्तिअं, एतावत् = एत्तिअं ॥  
 इत्तिल, इयत् = एत्तिलं, यावत् = जेत्तिल, एतावत् = एत्तिलं ।<sup>४</sup>  
 एदह, इयत् = एदहं, यावत् = जेदहं, एतावत् = एदहं ।

प्राकृत में एक से श्रेष्ठ तथा सत्रसे श्रेष्ठ के अर्थ में तर (अर),  
 तम (अम), ईयस् (ईअस्) तथा इष्ट (इट्ट) प्रत्ययों का  
 प्रयोग संस्कृत के समान होता है ।

जैसे—

तिम्प	तिम्पअर	तिम्पअम
पिअ	पिअअर	पिअअम
गुरु	गरीयस	गरिट्ट
पहु	पहीयस, पहुअर	पडिट्ट पहुअम आदि ।

## वारहवाँ अध्याय

### स्त्रीप्रत्यय<sup>१</sup>

प्राकृत में केवल तीन ही स्त्री प्रत्यय ( आ, ई, ऊ ) दृष्टिगोचर होते हैं तथा इनका प्रयोग संस्कृत के ही समान होता है ।  
जैसे—

#### १—आ प्रत्यय

अकारान्त शब्दों को स्त्रीलिङ्ग बनाने में आ प्रत्यय का उपयोग होता है ।

अअ + आ = अआ ( अजा )

वच्छ + आ = वच्छा ( वत्सा )

निरुण + आ = निरुणा ( निपुणा )

पठम + आ = पठमा ( प्रथमा )

- (३) अजातिवाचक पुल्लिंग शब्दों से स्त्रीलिंग बनाने के लिए ई प्रत्यय विकल्प से होता है ।  
नील + ई, आ = नीली, नीला ( नीली )  
हसमाण + ई, आ = हसमाणी, हसमाणा ( हसमाना ) आदि ।
- (४) छाया तथा हरिद्रा शब्दों से स्त्रीलिंग की विवक्षा में विकल्प से ई प्रत्यय होता है ।  
छाया + ई = छाही छाया, हलदा + ई = हलदी हलदा ( हरिद्रा ) ।
- (५) सु, अम्, आम् को छोड़कर अन्य सुप् परे रहते किम् यद् वद् शब्दों से स्त्रीलिंग की विवक्षा में विकल्प से ई प्रत्यय होता है ।  
कीओ, काओ, जोओ, जाओ, तीओ, ताओ, इत्यादि ।

### ३—ऊ प्रत्यय

आर्य शब्द से स्त्रीलिंग की विवक्षा में कहीं-कहीं ऊ प्रत्यय लगता है ।

अग्न् + ऊ = अग्जू ( आर्या )<sup>१</sup>

१ यथा वाच्यमेव । हे० मूत्र ८।१।७७ की वृत्ति ।

## तेरहवाँ अध्याय

### लिङ्गानुशासन

प्राकृत में संस्कृत के समान सभी सवाएँ तीन लिंगों—पुंलिंग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग—में विभक्त की गयी हैं। लिंग व्यवस्था की निम्न विशेषताएँ संस्कृत से भिन्न हैं—

- (१) प्रावृष्, शरद् तथा तरणि शब्दों का प्रयोग पुंलिंग में होता है।  
प्रावृट्, (स्त्री०) = पाउसो (पुं०), शरद् (स्त्री०) = सरओ (पुं०), तरणि. (स्त्री०) = तरणी (पुं०)।
- (२) दामन्, शिरस् तथा नभस् शब्दों को छोड़ कर शेष सकारान्त एवं नकारान्त शब्दों का प्रयोग प्रायः पुंलिंग में होता है।<sup>१</sup>  
यश. (नपुं०) = जसो (पुं०), पय (नपुं०) = पओ (पुं०)  
नर्म (नपुं०) = नम्मो (पुं०), जन्म (नपुं०) = जम्मो (पुं०)।
- (३) अक्षि वाचक तथा वचन आदि शब्दों का प्रयोग विकल्प से पुंलिंग में होता है।<sup>२</sup>  
अक्षिणी (नपुं०) = अक्षी (पुं०), अच्छोइ (नपुं०), अक्षी (स्त्री०)  
चक्षुपी (नपुं०) = चखू (पुं०), चक्खूइ (नपुं०)  
नयने (नपुं०) = नयगा (पुं०), नयणाइ (नपुं०)  
लोचने (नपुं०) = लोअणा (पुं०), लोअणाइ (नपुं०)  
वचनानि (नपुं०) = वयणा (पुं०), वयणाइ (नपुं०)  
कुलम् (नपुं०) = कुलो (पुं०), कुल (नपुं०)  
माहात्म्यम् (नपुं०) = माहत्पो (पुं०), माहत्पं (नपुं०)  
दुग्गानि (नपुं०) = दुक्कमा (पुं०), दुक्कमाइ (नपुं०)  
भाजनानि (नपुं०) = भायणा (पुं०), भायणाणि (नपुं०)।  
इत्यादि।

१. प्रावृद् शरत्तरणव. पुषि । १।१।३१। हे०॥

२. स्तमशम-विरो-नम. ॥८॥१।३२। हे० ।

३. वाच्यं-वचनानि । ८।१।३३। हे०॥

- (४) पृष्ठ, अक्षि तथा प्रश्न शब्दों का प्रयोग विकल्प से स्त्रीलिंग में होता है ।<sup>४</sup>

पृष्ठम् ( नपुं० ) = पुट्टी ( स्त्री० ), पुट्टं ( नपुं० ) ।

अक्षि ( नपुं० ) = अच्छी ( स्त्री० ) अच्छं ( नपुं० ) ।

प्रश्नः ( पुं० ) = पण्डा ( स्त्री० ), पण्डो ( पुं० ) ।

- (५) गुण आदि शब्दों का प्रयोग विकल्प से नपुंसकलिंग में होता है ।<sup>५</sup>

गुणाः ( पुं० ) = गुणाई ( नपुं० ), गुणा ( पुं० ) ।

देवाः ( पुं० ) = देवाणि ( नपुं० ), देवा ( पुं० ) ।

विन्दवः ( पुं० ) = विन्दूई ( नपुं० ), विन्दुणी ( पुं० ) ।

रत्नगः ( पुं० ) = रत्नगं ( नपुं० ), रत्नगो ( पुं० ) ।

मण्डलाम्रः ( पुं० ) = मण्डलगं ( नपुं० ), मण्डलगो ( पुं० ) ।

कररूढः ( पुं० ) = कररूढं ( नपुं० ) कररूढो ( पुं० ) ।

वृक्षाः ( पुं० ) = रूम्साई ( नपुं० ), रूम्सा ( पुं० ) ।

- (६) इमान्त तथा अञ्जलि आदि शब्दों का प्रयोग विकल्प से स्त्रीलिंग होता है ।<sup>६</sup>

इमान्त शब्द—

गरिमा ( पुं० ) = एसा गरिमा ( स्त्री० ), एस गरिमा ( पुं० ) ।

महिमा ( पुं० ) = एसा महिमा ( स्त्री० ), एस महिमा ( पुं० ) ।

आदि ।

अञ्जलि आदि शब्द—

अञ्जलि. ( पुं० ) = एसा अञ्जली ( स्त्री० ) एस अञ्जली ( पुं० ) ।

ग्रन्थिः ( पुं० ) = एसा गण्ठी ( स्त्री० ), एस गण्ठी ( पुं० ) आदि ।

- (७) स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होने पर बाहु शब्द के उकार को आकारादेश हो जाता है ।

बाहुः ( पुं० ) = एसा बाहा ( स्त्री० ), एसो बाहू ( पुं० ) ।

४. वृष्ठातिप्ररनाः द्विसं वा ॥४॥२०॥२२०॥

५. दुणापाः षडे वा ॥८॥१॥२५॥हे०॥

६. वेमाञ्ज्यायाः द्विसम् ॥८॥१॥२५॥हे०॥

७. बाहोराद् ॥१॥१॥२५॥हे०॥

## ( संस्कृतच्छाया )

- प्रथम शतक } छादयन्ति ये प्रभुत्व कुपिता दासा इव ये प्रसादयन्ति ।  
गाथा ९१ } त एव महिलाणां प्रिया शोभा स्वामिन एव वराका ॥१॥
- द्वितीयशतक } ते विरला सत्पुरुषा येषां स्नेहोऽभिन्नमुखराग ।  
गाथा १३ } अनुदिवसवर्धमान ऋणमिव पुत्रेषु सक्रामति ॥२॥
- तृतीयशतक } अद्य गत इत्यद्य गत इत्यद्य गत इति गणनशीलया ।  
गाथा ८ } प्रथम एव दिवसार्धे बुद्ध्य रेखाभिश्चित्रितम् ॥३॥
- गाथा १७ } तन्मित्र कर्त्तव्य यत्किल व्यसने देशकालेषु ।  
आलिखितभित्तिपुत्तलमिव न पराङ्मुख तिष्ठति ॥४॥
- गाथा २४ } तन्मध्यम एव वर दुर्जनसुतनाभ्यां द्वाभ्यामपि न कार्यम् ।  
यथा दृष्टस्तापयति खलस्तथैव सुजनोऽदृश्यमान ॥५॥
- गाथा ३४ } यस्य यत्रैव प्रथम तस्या अङ्गे निपतिता दृष्टि ।  
तस्य तत्रैव स्थिता सर्वाङ्ग केनापि न दृष्टम् ॥६॥
- चतुर्थशतक } दृढरोपफ्लुपितरयापि सुजनस्य मुखादप्रिय कुत ।  
गाथा १९ } राहुमुखेऽपि शशिन किरणा अमृतमेव मुञ्चन्ति ॥७॥
- गाथा ८० } व्यसनेऽनुद्विग्ना विभवेऽगर्विता भये धीरा ।  
भवन्त्यभिन्नस्वभावा समेषु विषमेषु सत्पुरुषा ॥८॥
- गाथा ९७ } धन्यास्ता महिला या दयित स्वप्नेऽपि प्रेक्षन्ते ।  
निद्रैव तेन विना नैति का प्रेक्षते स्वप्नम् ॥९॥
- अष्टमशतक } सदसद्बुख सुख च या गृहस्य जानन्ति ।  
गाथा १२ } ता पुत्रक महिला शोभा जरा मनुष्याणाम् ॥१०॥
- सप्तमशतक } गृहमिव त्रिचरहित निर्झरकुहरमिव सलिलशून्यम् ।  
गाथा ६ } गोधनरहित गोष्ठमिव तस्या यदन तव वियोगे ॥११॥
- गाथा ९५ } धन्या बधिरा अन्धास्त एव जीवन्ति मानुषे लोके ।  
न शृण्वन्ति पिशुनवचन खलानामृद्धि न प्रेक्षन्ते ॥१२॥



## १. गाथावली

- प्रथम शतक | णूमेन्ति चे पहुत्तं कुविअं दासा व्व जे पसाअन्ति ।  
गाथा ९१ | ते विअ महिलाणं पिआ सेसा सामि विअ वराआ ॥१॥
- द्वितीय शतक | ते विरला सप्पुरिसा जाण सिणेहो अहिण्णमुद्राओ ।  
गाथा १३ | अणुदिअहवद्धुमाणो रिणं व पुत्तेसु संक्रमइ ॥२॥
- तृतीय शतक | अज्जं गओ त्ति अज्जं गओ त्ति अज्ज गओ त्ति गणरीए ।  
गाथा ८ | पढम विअ दिअइद्धे कुट्टो रेहाहिं चित्तलिओ ॥३॥
- गाथा १७ | तं मित्त काअञ्चं ज क्रि वसणम्मि देसआलम्मि ।  
आलिहियभित्तिवाउल्लअं व ण परम्मुहं ठाइ ॥४॥
- गाथा २४ | ता मज्झिमो विअ वरं दुज्जणमुअणेहिं दोहिं वि ण कज्जं ।  
जह दिट्ठो तवइ खलो, तहेअ सुअणो अईसन्तो ॥५॥
- गाथा ३४ | जस्स जह विअ पढमं तिस्सा अज्जम्मि णिवडिआ दिट्ठी ।  
तस्स तहिं चेअ ठिआ सञ्चअं केण वि ण दिट्ठम् ॥६॥
- चतुर्थ शतक | दढरोसकलुसिअम्स वि सुअणस्स मुहाहि पिप्पिअं कओ ।  
गाथा १९ | राहुमुहम्मि वि ससिणो क्रिणा अमअं विअ मुअन्ति ॥७॥
- गाथा ८० | वसणम्मि अणुविग्गा, विहवम्मि अगविआ, भए धीरा ।  
होन्ति अहिण्णसहाया समेसु विसमेसु सप्पुरिसा ॥८॥
- गाथा ९७ | धण्णा ता महिलाओ जा दइअं सित्रिणए वि पेच्छन्ति ।  
णिइ विअ तेण विणा ण एइ का पेच्छए सित्रिणम् ॥९॥
- षष्ठम शतक | सन्तमसन्तं दुक्खं सुइ च जाओ धरस्स जाणन्ति ।  
गाथा १२ | ता पुत्तअ महिलाओ सेसाओ जरा मनुस्साणम् ॥१०॥
- सप्तम शतक | गेहं व वित्तरहिअं णिज्जरकुट्टरं व सल्लिमुण्णविअम् ।  
गाथा ९ | गोइणरहिअं गोट्ट व तीअ वअणं तुइ विओए ॥११॥
- गाथा ९५ | धण्णा यहिरा अन्धा ते च्चिअ जीअन्ति माणुमे लोए ।  
ण सुणन्ति पिसुणवअणं खलाज ऋदिं ण पेम्बन्ति ॥१२॥

१. प्राकृत के सर्वश्रेष्ठ बर्हि हाउ (गायजाहा) समय ६६ ई० पू० द्वारा रचयित  
गाथावली (गाथावली) (प्ये मन्दिअर आचार्याराम ओग १४४ द्वारा  
रचयित तथा प्रसार प्रकाशन पुना द्वारा १०३३ में प्रकाशित) में उद्धृत ।

( संस्कृतच्छाया )

आश्वास—३

- गाथा—७ युष्माकमेवैष भर आज्ञामात्रफल प्रभुत्वशब्दः ।  
धरुणः छायाग्रहो विशदं विकसन्त्यात्मना कमलसरांसि ॥१॥
- गाथा—१० ते धिरलाः सत्पुरुषा येऽभणेन्तो घटयन्ति कार्यालापान् ।  
स्तोका एव तेऽपि द्रुमा ये अज्ञातकुसुमनिर्गमा ददति फलम् ॥२॥
- गाथा—१२ अव्यवच्छिन्नप्रसृतोऽधिरुमुद्धानति स्फुरितशूरच्छायाः ।  
उत्साहः सुभटानां विपमस्फलितो महानदीनामिव स्रोतः ॥३॥
- गाथा—१९ मानेन परिस्थापिता कुलपरिपाटिघटिता अनवनतपूर्वा ।  
चिन्तयितुमपि न तीर्यते अवधूयमाना परेण निजरुच्छाया ॥४॥
- गाथा—२१ आदृतसमरागमना व्यसने अप्युत्सवे च समरागमनसः ।  
अवसादितविपमार्था धीरा एव भवन्ति संशयेऽपि समर्थाः ॥५॥
- गाथा—२२ व्यवसायसपिपासाः कथं ते हस्तस्थितं न पास्यन्ति यशः ।  
ये जीवितसन्देहे विषं भुजङ्गा इवोद्धमन्त्यमर्षम् ॥६॥
- गाथा—२६ यो लङ्घ्यते रविणा यः च क्षप्यते क्षयानलेनापि बहुशः ।  
कथं स उदितपरिभवो दुस्तर इति प्लवगानां भण्यत उदधि ॥७॥
- गाथा—२७ चिन्त्यतां तात्रच्चिर कुलव्यपदेशक्षमं वहतां यशः ।  
लज्जाया, समुद्रस्य च द्वयोरपि किं भवति दुष्करं-  
व्यतिक्रमितुम् ॥८॥
- गाथा—२९ बान्धवस्नेहाभ्यधिको भवति परोऽपि विनयेन सेव्यमानः ।  
किं पुनः कृतोपकारो निष्कारणस्निग्धबान्धवो दाशरथिः ॥९॥
- गाथा—३२ मुक्तसलिला जलधरा अभिनवदत्तफलाश्च पादपनिवहाः ।  
लघुका अपि भवन्ति गुरुना समरमुखावहृतमण्डला-  
प्राश्च भुजाः ॥१०॥
- गाथा—३९ दर्पं न मुञ्चतौ भुजी प्रहरणकार्यसुलभा द्वियन्ते महीधरा ।  
विस्तीर्णो गगनपथो नीयते कस्माद् गुरुरत्थ प्रतिपक्ष ॥११॥
- गाथा—४० धैर्यमेव रक्षन्तो गुरुमपि भर धारयन्ति केवलं सत्पुरुषाः ।  
स्थानमेवामुञ्चन्तो नि शेषं त्रिभुवनं तापयन्ति रथिकराः ॥१२॥
- गाथा—४७ सम्मुत्समितैकैकरिमन्क, किलासन्नसंशये सहाय, ।  
यावन्न दीयते दृष्टि कर्त्तव्यं भवति तात्रच्चिरनिर्वृत्तम् ॥१३॥

## २. वानरप्रोत्साहनम्

आश्वास—३

- गाथा ७ तुम्ह च्चिअ एस भरो आणामेत्तप्फलो पहुत्तणसद्दो ।  
अरुणो छाआणहणो विसअ विअमन्ति अप्पणा कमलसरा ॥१॥
- गाथा १० ते विरला सप्पुरिसा जे अमणेन्ता घडेन्ति कज्जालावे ।  
थोअ च्चिअ ते पि दुमा जे अमुणिअज्जुमुमणिगमा देन्ति फल ॥२॥
- गाथा १८ अच्चोच्छिण्णपसरिओ अहिअ उद्धाड फुरिअसूरच्छाओ ।  
उच्छाहो सुभडाण विसमकवलिओ महाणईण व सोचो ॥३॥
- गाथा १९ माणेग परिट्टिआ कुलपरिवाटिघडिआ अणोणअउव्वा ।  
चिन्तेउ पि ण तीरड ओहुवन्ती परेण णिअअच्छाया ॥४॥
- गाथा २१ आडिअसमराअमणा वसणग्मि वि उत्तपे अ समराअमणा ।  
'अवसाइअविसमत्था धीर च्चिअ होन्ति ससए वि समत्था ॥५॥
- गाथा २२ ववसाअसप्पिआसा कह ते हत्थट्टिअ ण पाहन्ति जसं ।  
जे जीप्पिअसदेहे विस भुअङ्ग व्व उव्वमन्ति अमरिस ॥६॥
- गाथा २६ जो लङ्घिज्जइ रविणा जो अ सप्पिज्जइ खआणलेण वि बहुसो ।  
कह सो उइअपरिहवो दुत्तारो ति पपआण भण्णइ उअही ॥७॥
- गाथा २७ चिन्तिउजउ दाप चिर कुल्यएसक्खम वहन्ताण जस ।  
लज्जाइ समुद्दस्स अ दोण्ह पि किं होइ दुक्करं वोलेउ ॥८॥
- गाथा २९ वन्धवणेह्वभहिओ होइ परो वि विणएण सेप्पिज्जन्तो ।  
किं उण कओपआरो णिक्कारणणिद्धवन्धवो दासरही ॥९॥
- गाथा ३८ मुक्खसलिला जलहरा अहिणअदिण्णप्फला अ पाअवणिचहा ।  
लहुआ पि होन्ति गरुआ समरमुहोहरिअमण्हल्लगा अ भुओ ॥१०॥
- गाथा ३९ दप्पं ण भुअन्ति भुआ पहरणकज्जमुलहा धरेन्ति महिहरा ।  
वित्थिण्णो गअणअहो णिज्जइ तीस गुरअत्तण पट्टिमन्वो ॥११॥
- गाथा ४० धीरघिअ रक्खन्ता गम्भग्मि भर धरेन्ति णवर सप्पुरिसा ।  
टाणं च्चिअ अमुअन्ता णोसेम तिहुअण तपेन्ति रविअरा ॥१२॥
- गाथा ५७ समुद्दमिलिएक्कम्मेक्के को इर आसण्णममअग्मि सडाओ ।  
वाप ण दिज्जइ दिट्ठी कायञ्च होइ ताप निरगिज्जुत्त ॥१३॥

१. धी प्रवृत्त ( धी शजान्ते ) विशिष्ट रावण ( शत्रुघ्न ) महाराज्य ( वा शपाशापिन्ड बगवत द्वारा सन्तानि तथा संस्तुत बालेन बलवता ये एव १९५९ में प्रकाशित ) के तृतीय पादपत्र में उद्धृत ।

( संस्कृतच्छाया )

- गाथा ८२ को निन्दति नीचतमान् गुरुकृतरान् क' प्रशंसितुं तरति ।  
सामान्यमेव स्थानं स्तुतीनां परिनिन्दनानां च ॥१॥
- गाथा ८६३ नित्यं धनदाररहस्यरक्षणे शङ्किनोऽपि आश्चर्यम् ।  
आसन्ननीचवर्गा यत् तथापि नराधिपा भवन्ति ॥२॥
- गाथा ८६४ प्रेक्षध्वं विपरोतमिदं बह्वी मदिरा मदयति न खलु स्तोका ।  
लक्ष्मी पुनः स्तोका यथा मदयति न तथा किल प्रभूता ॥३॥
- गाथा ८६६ एके लघुकृतभावा गुणैर्लब्धुं महन्ति धनकृद्धि ।  
अन्ये विशुद्धचरिता विभवाद् गुणान् विमृग्यन्ति ॥४॥
- गाथा ८७८ को वा न पराङ्मुखो निर्गुणानां गुणिनः न कं वा दुन्वन्ति ।  
यो वा न गुणी यो वा न निर्गुणः स सुखं जीवति ॥५॥
- गाथा ८८० अविवेकशङ्किन एव निर्गुणाः परगुणान् प्रशंसन्ति ।  
लब्धगुणाः पुनः प्राद्युषो वाढं वा मा परगुणेषु ॥६॥
- गाथा ८८१ सर्वे एव स्वगुणोत्कर्षलालसो वहति मत्सरोत्साहम् ।  
ते पिशुना ये न सहन्ते निर्गुणा परगुणोद्गारान् ॥७॥
- गाथा ९०० गुणिनो विभवारूढानां विभविनो गुरुगुणानां न खलु किमपि ।  
लघुरेव अग्नोन्यं गिरीणां ये मूलशिरसरेषु ॥८॥
- गाथा ९२५ धर्मप्रसूता कथं भवतु भगवती द्वेष्यसज्जना लक्ष्मीः ।  
ता अलक्ष्म्य एव लक्ष्मीनिभा या अनार्येषु ॥९॥
- गाथा ९२६ या विपुला या चिरं या परिभोगोज्ज्वला लक्ष्म्यः ।  
आचारधराणामेव ता न पुनश्चेतराणाम् ॥१०॥
- गाथा ९५६ गाढमदमूढहृदया लब्ध्या धनं गुणं वा यं कमपि ।  
कथं ते स्मरिष्यन्ति परं आत्मापि खलु येषां विमर्यते ॥११॥
- गाथा ९६२ नपरं दोषास्त एव ये मृतम्यापि जनस्य ध्रुयन्ते ।  
शायन्ते जीवतोऽपि ये केवलं गुणा अपि त एव ॥ १२ ॥

३. सुभाषितानि<sup>१</sup>

- गाथा ८२ को णिन्दइ णीययमे गरुययरे को पससिउ तरइ ।  
सामण्णं च्चिअ ठाण धुईण परि-णिन्दणाण च ॥१॥
- गाथा ८६३ णिच्च धण-दार-रहस्स खखणे सङ्किणो वि अच्छरिय ।  
आसण्णणीयवग्गा न तह वि णराहिवा होन्ति ॥२॥
- गाथा ८६४ पेच्छह विवरीयमिम बहुया मइरा मएइ ण हु थोवा ।  
लच्छी उण थोवा जह मएइ ण तहा इर बहुया ॥३॥
- गाथा ८६६ एक्के लहुय सहाना गुणेहिँ लहिउं महन्ति धणरिद्धि ।  
अण्णे विमुद्ध-चरिआ विहवाहि गुणे विमग्गन्ति ॥४॥
- गाथा ८७८ को व्य ण परम्महो णिग्गुणाण गुणिणो ण क व दूमेन्ति ।  
जो वा ण गुणी जो वा ण णिग्गुणो सो मुह जियइ ॥५॥
- गाथा ८८० अविवेय-सङ्किणो च्चेय णिग्गुणा परगुणे पससन्ति ।  
लद्धगुणा उण पहुणो वाढ वा मा परगुणेषु ॥६॥
- गाथा ८८१ सञ्जो च्चिय सगुणुक्करिसलालसो वहइ मच्छरुच्छह ।  
ते विमुणा ने ण सहन्ति णिग्गुणा परगुणुग्गारे ॥७॥
- गाथा ९०० गुणिणो विहवारुढाण विहविणो गुग्गुणाण ण हु किं पि ।  
लहुअ च्चिअ अण्णोण्णं गिरीण जे मूलसिहरेसु ॥८॥
- गाथा ९२५ धम्म पमूआ कह होउ भयइ वेस सज्जणा लच्छी ।  
ताओ अलच्छिओ च्चिय लच्छि णिहा जा अणज्जेसु ॥९॥
- गाथा ९२६ जा विउला जाओ चिर जा परिहोउज्जलाओ लच्छीओ ।  
आयारघराणा च्चिय ताओ ण उणो अ इयराण ॥१०॥
- गाथा ९५६ गाढ मय-मूढ हियया लहिउण धण गुण व ज किं पि ।  
कइ ते भरिहन्ति परं अण्णा वि हु जाण पन्हुसइ ॥११॥
- गाथा ९६२ णवर दोसा ते च्चेय ने मयस्स वि जणस्स मुज्जन्ति ।  
णज्जन्ति जियन्तस्स वि ने णवर गुणा वि ते च्चेय ॥१२॥

१ श्री वाचस्पति ( ७१० ई० लग्ना ) विरचित-मउट्टरहो ( संतर पांडुरङ्ग परिष्कृत द्वारा सम्पादित तथा भगवत्पद श्रीविष्णुसिंह रिगप इन्स्टीट्यूट पूना द्वारा १९२० में प्रकाशित ) में उद्धृता ।

( सस्कृतच्छाया )

जयन्ति ते सज्जनभानव सदा  
 विचारिणो येपा सुवर्ण सचया ।  
 अदृष्टदोषा विरुसन्ति सगमे  
 कथानुबन्धा कमलाकरा इव ॥ १ ॥

सो जयतु येन सुजना इव दुर्जना इह विनिर्मिता भुवने ।  
 न तमसा विना प्राप्नुवन्ति चन्द्रकिरणा अपि परहावम् ॥ २ ॥

दुर्जनसुजनेभ्यो नमो नित्य परकार्यव्यापृतमनोभ्य ।  
 एके भषणस्वभावा परदोषपराडूसुरा अन्ये ॥ ३ ॥

अथवा न कोऽपि दोषो दृश्यते सकले जीवलोके ।  
 सर्व एव सुजनजनो यद्गणाम तन्निशाभ्यन्तु ॥ ४ ॥

सज्जनसगेनापि दुर्जनस्य न खलु क्लुपत्य समपसरति ।  
 शशिमण्डलमध्यस्थितोऽपि कृष्ण एव कुरङ्ग ॥ ५ ॥

दुर्जनसगेनापि सज्जनस्य नाश न भवति शीलस्य ।  
 स्त्रिय सलग्नमपि मुरा तथापि रत्नधरो मधु स्रवति ॥ ६ ॥

४. सज्जनदुर्जनचर्चा<sup>१</sup>

जयति ते सज्जन-भाणुणो सया वियारिणो जाण सुवण्ण-संचया ।

अइद्वदोसा वियसंति सगमे कहाणुवंधा कमलायरा इव ॥१॥

सो जयउ जेण सुयणा वि(व)दुज्जणा इह विणिम्मिया भुयणे ।

ण तमेण विणा पावंति चंदकिरणा वि परिहाव ॥२॥

दुज्जण-सुयणाण णमो णिच्च पर-कज्ज-वावड-मणाण ।

एव्हे भसण-सहावा पर-दोस परम्मुहा अण्णे ॥३॥

अहवा ण को वि दोसो दीसइ सयलग्गि जीय-लोयग्गि ।

सग्गो च्चिय सुयणयणो न भग्गिमो तं णिसामेह ॥४॥

सज्जन-सगेण वि दुज्जगस्म ण हु कलुसिमा समोसरइ ।

ससि-मंडल मज्झ-परिट्ठिओ वि कसणो च्चिअ कुरंगो ॥५॥

दुज्जण-सगेण वि सज्जनस्स णास ण होइ सीलस्स ।

तीए सलोणे वि मुहे तह वि हु अहरो महु सवइ ॥६॥

१. थो महाशवि कोऊन (१०वीं शताब्दी) विरचित-नीतारई (डॉ० ए० ए० उताप्पे द्वारा सम्पादित एवं विधो जैन प्रन्थमाता, बम्बई मे १९४९ में प्रकाशित) से ( गाथा १२-१७ ) उद्धृत ।

## ( सस्कृतच्छाया )

- श्लोक ३० विच्छ्रययन्गररमणीमण्डलस्थाननानि,  
 कम्पाययन् गगनकुहर कान्तिज्योत्स्नाजलेन ।  
 प्रेक्षमाणाना हृदयनिहित निर्दलयश्च दर्पं,  
 दोलालीलासरलतरलो दृश्यतेऽस्या मुखेन्दु ॥१॥
- श्लोक ३१ उच्येपु गोपुरेषु धवलध्वजपटाडम्बरावलीषु ।  
 घण्टाभिरुज्ज्वलसुरतरुणिविमानानुसार लभन्ती ॥  
 प्राकार लङ्घयन्ती करोति रयवशादुन्नमन्ती नम ती ।  
 आयान्ती यान्ती च दोला जनमनोहरण ब्रूडनोत्ब्रूडने ॥२॥
- श्लोक ३२ रणन्मणिनूपुर ऋगृगायमानहारच्छट ।  
 कलन्वणितकिङ्किगीमुखरमेखलाडम्बरम् ॥  
 विलोलवलयवलीजनितमञ्जुशिञ्जारव  
 न कस्य मनोमोहन शशिमुख्या हिन्दोलनम् ॥३॥
- श्लोक ३३ उपरिस्थितस्तनप्राग्भारपीडित चरणपङ्कजयोर्युगम् ।  
 आकारयतीव मदन रणन्मणिनूपुररवेण ॥४॥
- श्लोक ३४ हिन्दोलनलीलायितमुखर रथचक्रवर्तुल रमणम् ।  
 क्लिक्किनायतीव सहर्ष काञ्चीमणिकिङ्किणी रवेण ॥५॥
- श्लोक ३५ तारान्दोलनलीलासरद्सरिच्छलेनास्या हार ।  
 विस्मरोतीव कुसुमायुधनरपते कीर्तिवल्लय ॥६॥
- श्लोक ३७ ताटङ्कयुग गण्डयोर्वहलघुसृणयोर्घटनलीलाभि ।  
 ददातीव दोलान्दोलनरेखा गणनस्तीतुषेन ॥७॥
- श्लोक ३९ दोलारसविच्छेद कथमपि मा भवत्प्रति पततीव ।  
 पृष्ठे चेण्णिदण्डो मन्मथचर्मयष्टिकायमान ॥८॥



५. दोलालीला'

द्वि० जव०

श्लोक ३० विच्छाअन्तो णअररमणीमण्डलस्साणणाडं  
विच्छोलन्तो गअणकुहरं कन्तिजोण्हाबलेण ।  
पेच्छन्तीण हिअअणिहिअं णिदलन्तो, अ दप्पं,  
दोलालीलासरत्तरलो दीसए से मुहेन्दू ॥१॥

श्लोक ३१ उच्चोहिं गोउरेहिं धवलधअवढाडम्बरिल्लावलीहिं,  
घण्टाहिं विन्दुरिल्लासुरतरुणिविमाणुणुसार लट्टन्ती ।  
पामारं लङ्घअन्ती कुणइ रअउसा उष्णमन्ती णमन्ती,  
एन्ती जन्ती अ दोला जणमणहरणं बुद्धुणुद्वुद्धुणेहिं ॥२॥

श्लोक ३२ रणन्तमणिणेउर झणझणन्तहारच्छडं,  
फणवणिअकिङ्किणीमुहलमेहलाडम्बरं ।  
विलोलवलआउलीजणिअमज्जुसिज्जारव,  
ण कस्स मणमोहण ससिमुहीअ हिन्दोलणं ॥३॥

श्लोक ३३ उवरिट्ठिअथणपठभारचम्पिअ चलणपङ्कआण जुअं ।  
हकारइ व्व मअण रणन्तमणिणेउररवेण ॥४॥

श्लोक ३४ हिन्दोलणलीलाइअमुत्तल रहचवचकल रमणं ।  
किलकिलइ व्व सहरिस मणिकउतीकिङ्किणिरवेण ॥५॥

श्लोक ३५ तारन्दोलणहेलासरन्तमरिअच्छलेण से हारो ।  
निव्वरइ व कुसुमाउट्टणरवइणो क्किचिरलीओ ॥६॥

श्लोक ३७ ताडङ्गजुअं गण्डेमु बहलघुसिणेमु घटणलीलाहिं ।  
देइ व दोलन्दोलणरेहाओ गणणओडुणेण ॥७॥

श्लोक ३९ दोलारअविच्छेओ फट पि मा होहिइ चि पडइ व्व ।  
पुट्टीअ वेणिदण्ठो वम्मदचम्माट्टिआअन्तो ॥८॥

१. रात्रोत्तर ( ६०० ई० ) निरचित-कपूर्वमन्तरी (Sten Kono v द्वारा सम्पादित तथा भोजीलास बनारसीराज, बंगओ रोड, जवाहर नगर, नई दिल्ली-१ द्वारा प्रकाशित ) मे उद्धृत ।

( संस्कृतच्छाया )

अथ मालिक-दत्त-माल-भारी वनमाली मुसली च व्रजन्तं ।  
 परिधौत-वरिष्ठ-भाण्डवाहं रजकं कमपि पश्यतः राजमार्गे ॥ १ ॥  
 मृदुहासमनोहराननाभ्यां कुमाराभ्यां वसनानि याचितः सः ।  
 कुमना धनगर्वदुर्विनीतः कुपित भापते भोजराजभृत्यः ॥ २ ॥  
 न खलु संस्मरितुमपि शक्यते यत् तदेतद् जल्पथ डिम्भकौ मिमेवम् ।  
 ननु खादति तर्जितोऽपि यः स स्पृष्टः किं न करोति कृष्णभोगी ॥३॥  
 न ,परं न लप्स्यत इति ज्ञेय वसनं भोजपतेर्याच्यमानम् ।  
 नन्वेतदेव युवयो शीर्षं छेदस्यापि हा भविष्यति कारणं जानीयातम् ॥४॥  
 अथ भवतु सहे एकवारमह युवयोर्वालचांपलानि ।  
 न सहेव नराधिप इमानि यदि स श्रोष्यति वात्सल्यवन्ध्य ॥ ५ ॥  
 इति स कटु भाषित्वा यदा प्रहसन्नेव गन्तुं प्रवृत्तः ।  
 सहसा मधुसूदनेन तदा वसनानि हृतानि तस्य कराभ्याम् ॥ ६ ॥

६. । रजकस्य औद्धत्यम्<sup>१</sup>

अह मालिअ-दिण्ण-माल-भारी घणमाली, मुसली अ वचमाणं ।

परिघोअ-वरिल्ल-भंडवाहं रअअं कं पि णिअंति राअमग्गे ॥ १ ॥

मउहास-मणोहराणणेहिं कुमरेहिं वसणाइ जाइदो सो ।

कुमणो घण-गव्व-दुव्विणीओ कुविदो भासइ भोअराअ भिच्चो ॥ २ ॥

ण हु संभरिउं पि सकए जं तमिणं जपह डिंमआ किमेव्वं ।

णणु खादह तज्जिओ वि जो सो छिविओ किं ण कुणेइ कण्हभोई ॥ ३ ॥

णवरं ण लहिस्सइ चि णेअं वसणं भोअवइस्स जच्चमाण ।

णमिणं चिअ तुम्ह सीस-छेअस्स वि हो होस्सइ कालणं मुणेह ॥ ४ ॥

अह होदु सहेमि एकवारं, अहके तुज्झाण बाल-चावलाइं ।

ण सहेज्ज णराहिवो इमाइं जइ सो सोच्छइ वच्छलिज्ज-वंशो ॥ ५ ॥

इअ सो कडु भासिअण जाहे, पहसंती चिअ बोलिउ पवुत्तो ।

सहसा महु-सूअणेण ताहे वसणाइं हरिआइ से करादो ॥ ६ ॥

१. रामपाणिवाद ( १७०७ से १७७५ई० ) विरचित—वसणहो ( शकट ए० एन० उपाध्ये द्वारा सम्पादित ) के द्वितीय सर्ग से उद्धृत ।

## शौरसेनी प्राकृत .

. प्रमुख विशेषताएँ<sup>१</sup>

## सरलव्यञ्जन-परिवर्तन

त&gt;द, जानाति = जाणादि, लता = लदा, प्रभृति = पहुदि ।

&gt;ड, व्यापृतः = यावडो ।

थ&gt;ध, कथयति = कधेदि, मन्मथः = मन्मधो ( हे० के अनुसार थ को ध विकल्प से होता है । )

भ&gt;ह, भवति = हवदि, भवदि

ह&gt;घ, (विकल्प से) इह = इध, इह ; होह (भवथ) = होघ, होइ ।

## संयुक्तव्यञ्जन-परिवर्तन

यं&gt;य्य, ज्ञ ; आर्यः = अर्य्यो, अरज्जो, सूर्यः = सुर्य्यो, सुरज्जो ।

न्त&gt;न्द, महन्त. = महन्दो, निश्चिन्त = निश्चिन्दो ।

## शब्दरूप

डसि&gt;आदो, आदु (अ से परे डसि होने पर), वीरात् = वीरादो, वीरदु ।

न्>आ (सम्बोधन में सु परे रहते), कञ्चुकिन् = कञ्चुइआ,  
पत्त में तपरिन् = तपरिसि ।

न्&gt;म् = हे राजन् = भो रायं, भो राय ।

## धातुरूप

तिप्, त&gt;दि, दे (अ से परे होने पर), गच्छति = गच्छदि, गच्छदे ।

&gt;दि (अ भिन्न स्वर परे रहते), भवति = भोदि, होदि ।

भविष्यत् फल के प्रत्यय - स्तिदि, स्तिन्ति आदि, भविष्यति = भविसिदि  
( आदि ) ।

१. दृश्य - हेमचन्द्रः प्राकृतव्याकरण ८।४।२६०-२८६ तक एयं वररपिः प्राकृत-प्रवारा—द्वारण परिच्छेद ।

## आगम एवं आदेश

ण (आगम), युक्तम् इदम् = जुक्त णिम, जुक्तमिम, एव एतत् = एव णेद एवमेद । ( म् से परे इ या ए होने पर विकल्प से ण का आगम होता है ) ।

इदानीम् > दाणि, क्रिमिदानीं माम् = किं दाणि म ।

तावत् > दाव ताव, एतस्यास्तावदेतम् = एदाए दाव एद, एदाए ताव एद ।

तस्मात् > ता, तस्माद् यावत् प्रविशामि = ता जाव पविशामि ।

पूर्व > पूरव, अपूर्व नाटरुम् = अपुरव नाडयं ।

## अव्यय सूची ( सूचक अर्थों के साथ )

स्येव > एव, हीमाणहे—विस्मय, निर्देद, हञ्जे—चेटी को बुलाने क अर्थ मे,

ए > ननु, अम्महे—हर्ष, हीही—विदूषक की हसी ।

## कृदन्त—

क्त्वा > इय दूण ( विकल्प से ) पठिक्त्वा = पठिय, पठिदूण, पठित्ता ।

> अडुअ, कृत्वा = कडुअ पत्ते करिय करिदूण ।

( शेष सामान्य प्राकृत के नियमों के अनुसार । )

( सस्कृच्छाया )

विदूषक.—अन्यमन्य निमन्त्रयतु तावद् भवान् । अरिक्तस्तावदहम् ।  
ननु भणाम्यहमरिक्तक इति । किं भणसि सम्पन्नमशनमशितव्यं  
भविष्यतीति । अहं पुनर्जानाम्यधिरुमधुरस्यान्नस्यायोग्यतया  
अस्थि न भक्ष्यत इति । किमिदानीं मामुल्लाल्योल्लाल्य भणसि ।  
भणामि व्यापृत इति । किं भणसि दक्षिणा मापका भविष्यन्तीति ।

एष याचा प्रत्याख्यातो हृदयेनानुबध्यमानो गम्यते । अहो  
अत्याहिनम् । अहमपि नाम परस्यामन्त्रणानीति तर्कयामि । योऽहं  
तत्रभवतश्चारुदत्तस्य नेहेऽहोरात्रपर्याप्तसिद्धैर्नानाविधैर्हिङ्गुविद्धैरुद्गा-  
रसुगन्धिभिभूत्सेपमात्रप्रतीक्षितैरन्तरान्तरपानीयैरशनप्रकारैश्चित्रर इव  
बहुमल्लकैः परिवृत आकण्ठमात्रनशित्वा चत्वरवृषभ इव मोदकरजाद्यै  
रोमन्यायमानो दिवस क्षिपामि, स एवेदानीमहं तत्रभूतश्चारुदत्तस्य  
दरिद्रवया सम पारायतै साधारणवृत्तिमुपजीवन् अन्यत्र चरित्वा  
चरित्वा तस्यावासमेव गच्छामि । अन्यद्वाश्चर्यम् । ममोदरमवस्था-  
विशेष जानाति । अल्पेनापि तुप्यति । बहुमप्योदनभर भरिष्यति  
क्षीयमानम्, न याचते अदीयमान, न प्रत्याचष्टे । न सत्वहमीदृशेन  
न सन्तुष्ट ।

तत् पष्ठीकृतदेवमार्यस्य तत्रभवतश्चारुदत्तस्य कारगाद् गृहीत-  
मुमनोन्तरिक्षवासत्र । यात्रस्य पार्श्वपरिवर्त्तो भवामि ।

( परित्रम्यावलोक्य च ) एष तत्रभूतश्चारुदत्त प्रभातचन्द्र इव  
सक्त्वाप्रियदर्शनो यथाविभयेन गृहदेवतान्यर्चयन्नित एवागच्छति ।  
यावदेनमुपसर्पामि । ( निष्क्रान्त. )

### ७. चक्रवत्परिवर्तन्ते<sup>१</sup>

विदूपक :—अण्णं अण्णं णिमन्तेदु दाव भव । अरित्तओ दाव अहं । ण भणामि अह अरित्तओ त्ति । किं भणासि—सम्पण्णं असणं अण्हिदन्नं भविस्सदि त्ति । अहं पुण जाणामि अहिअमहुरस्स अम्बस्स अनोगादाए अण्ठी ण भक्खीअदि त्ति । किं दाणि मं उल्लालिअ उल्लालिअ भणासि । भणामि वावुदो त्ति । किं भणासि-दक्खिणामासआणि भविस्सदि त्ति ।

एसो वाआ पच्चाचक्खिदो हिअएण अणुअन्धीअमाणो गच्छीअदि । अहो अच्चाहिद । अह वि णाम परस्स आमन्तआणि त्ति त्त्थेमि । जो अहं तत्तहोदो चारुदत्तस्स गेहे अहोरत्तपय्यत्तसिद्धेहि णाणाविधेहि हिङ्गुविद्धेहि ओगारणसुगन्धेहि भूक्खेवमत्तपडिच्छिद्धेहि अन्तरन्तरपाणीएहि असणप्पआरेहि चित्तअरो विअ बहुमल्लएहि परिवुदो आअण्ठमत्त अण्हिअ चच्चरखुसहो विअ मोदअखज्जएहि रोमन्याअमाणो दिवसं खेवेमि, सो एव्व दाणि अहं तत्तहोदो चारुदत्तस्स दरिद्धदाए समं पारावदेहि साहारणवुत्ति उपजीवन्तो अण्णहिं चरिअ चरिअ तस्स आवासं एव्व गच्छामि । अण्णं च अच्छरिअं । मम उदर अवत्थाविसेसं जाणादि । अप्पेणावि तुस्सदि । बहुअ वि ओदणभरं भरिस्सदि दीअमाण, ण आएदि अदीअमाणं, ण पच्चाचिक्खदि । ण खु अहं एरिसेण ण सन्तुट्ठो ।

ता सट्ठीकिददेवअय्यस्स तत्तहोदो चारुदत्तस्स कारणादो गहीदो सुमणो अन्तलिअखवासो अ । जाव से पस्सपरिवत्ती होमि । (परि-  
क्रम्यावलोक्य च ) एसो तत्तभवं चारुदत्तो पभादचन्दो विअस करुणप्पि-  
अर्दंसणो जहाविभवेण गिहदेवदाणि अच्चअन्तो इदो एव्व आअच्छदि ।  
जाव णं उवसप्पामि । ( निष्कात )

१—भास ( तृतीय शताब्दी ) प्रणीत—चाणक्य ( गणपति मिथ्य द्वारा सशोचित एव अतः तद्ययन संस्कृत ग्रन्थावली मे १६२२ में प्रकाशित ) प्रथम प्रक ( पृ० ८-११ ) से उद्धृत ।

( संस्कृतच्छाया )

प्रियंवदा—हा धिक् हा धिक् । अप्रियमेव संवृत्तम् । कस्मिन्नपि पूजार्हे-  
ऽपराद्धा शून्यहृदया शकुन्तला । ( पुरोऽवलोक्य ) न खलु  
यस्मिन् कस्मिन्नपि । एष दुर्वासाः सुलभकोपो महर्षिः । <sup>१</sup> तथा  
शप्त्वा वेगचटुलोत्फुल्लदुर्वारया गत्या प्रतिनिवृत्तः । कोऽन्यो  
हुतमहाद्गर्धुं प्रभविष्यति ।

अनसूया—गच्छ । पादयोः प्रणम्य निवर्तयैनम् । यावदहमर्घ्योदक-  
मुपकल्पयामि ।

प्रियंवदा—तथा । ( इति निष्क्रान्ता )

अनसूया—( पदान्तरे स्वलित निरूप्य ) अहो । आवेगस्खलितया गत्या प्रम्रष्टं  
मे हस्तात् पुष्पभाजनम् । ( इति पुष्पोचय रूपयति )  
( ततः प्रविशति प्रियंवदा )

प्रियंवदा सति ! प्रकृतिवक्रः स कस्थानुनथं प्रतिगृह्णाति । किमपि  
पुनः सानुक्रोशः कृतः ।

अनसूया—( सस्मितम् ) तस्मिन् बह्वेतदपि । कथय ।

प्रियंवदा—यदा निवर्तितुं नेच्छति । तदा विज्ञापितो मया । भगवन् ।  
प्रथममिति प्रेक्ष्याविज्ञाततप प्रभाषस्य दुहितृजनस्य भगवतैको  
ऽपराधो मर्षयितव्य इति ।

अनसूया—ततस्तत ।

प्रियंवदा—ततः मे वचनमन्यथाभवितुं नार्हति त्रिन्वभिज्ञानाभरणदर्शनेन  
शापो निवर्तिष्यत इति मन्त्रयमाणः स्वयमन्तर्हितः ।

अनसूया—शक्यमिदानीमाश्रांसितुमस्ति । तेन राजर्षिणा संप्रस्थितेन  
स्वनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं स्मरणीयमिति स्वयं पितृद्वम् ।  
तस्मिन् स्नाधीनोपाया शक्यन्तला भविष्यति ।

प्रियंवदा—सन्नि । एहि ! देवकार्यं तावन्निवर्तयामः ।

( इति परिष्ठापतः )



## ८. अभिशाप-मर्षणम्<sup>१</sup>

प्रियंवदा—हद्धी हद्धी । अप्पिअं एव्व संवुत्तं । कस्सिं पि । पूआरुहे  
अव(व)रद्धा सुण्णहिअआ सउन्दला । (पुरोज्जलोक्य) ण हु  
जस्सि कस्सि पि । एसो दुव्वासो सुलह्कोवो(वो) महेसी । तह  
सवि(वि)अ वेअचहुलुप्फुल्लदुव्वाराए गईए पडिणिवुत्तो ।  
को अण्णो हुदवहादो दहिदुं पहविस्सदि ।

अनसूया—गच्छ । पादेसु पणमिअ णिवत्तेहि णं । नाव अहं अग्घोदअं  
उव(व)कप्पेमि ।

प्रियंवदा—तह ( इति निष्क्रान्ता )

अनसूया—( पदान्तरे स्खलित निष्पद्य ) अम्मो । आवेअमखलिदाए गईए  
पढभट्टं मे हत्थादो पुप्फभाअणं । ( इति पुष्पोच्चयं रूपयति )

प्रियंवदा—( प्रविश्य ) सहि । पकिदिवको सो कस्स अणुणअ पडिगेण्हदि ।  
किम्पि उण साणुकोसो किदो ।

अनसूया—(सस्मितम्) तस्सि बहु एदम्पि । कहेहि ।

प्रियंवदा—जदा णिवत्तिदुं ण इच्छदि तदा विण्णवि(वि)दो मए । भअवं ।  
पढमं च्चि(त्ति) पेक्खिअ अविण्णादतव(व)प्पहावस्स दुहिदुजणस्स  
भअवदा एको अव(व)राहो मरिसिदव्वो च्चि ।

अनसूया—तदो तदो ।

प्रियंवदा—तदो मे वअणं अण्णहाभविदु णारिहदि । किन्दु अहि-  
ण्णाणाभरणदंसणेण सावो(वो) णिवत्तिस्सदि च्चि मन्तअन्तो  
सअं अन्तरिहिदो ।

अनसूया—सक्क दाणि अस्ससिदुं अत्थि । तेण राएसिणा सम्पत्थिदेण  
सणामहेअक्किअं अङ्गुलीअअं सुमरणीअं च्चि(त्ति) सअं पिण्हं ।  
तस्सि साहीणोवा(वा)आ सउन्दला भविस्सदि ।

प्रियंवदा—सहि । एहि । देवकज्जं दाव णिवत्तेह् ।

( इति परिब्रामतः )

१—महाकवि कालिदास ( चतुर्थ-शताब्दी ) विरचित-अभिज्ञानशाकुन्तलम्  
( Monier Williams द्वारा सम्पादित तथा जाक्सफोर्ड से १८७६ में  
प्रकाशित ) चतुर्थ अंक विष्णुम् ( पृ० १३७-१४० ) से उद्धृत ।

( सस्कृतच्छाया )

चेटी—कथमद्यापि आर्या न विबुध्यते । भवतु प्रविश्य  
प्रबोधयिष्यामि ।

( इति नाट्येन परिक्रामति । ततः प्रविशत्याच्छादितशरोरा प्रसुप्ता वसन्तसेना )

चेटी—उत्तिष्ठतु उत्तिष्ठतु आर्या प्रभात सवृत्तम् ।

वसन्तसेना—( प्रतिबुध्य ) कथं रात्रिरेव प्रभात सवृत्तम् ?

चेटी—अस्माकमेतत्प्रभातमार्याया पुनः रात्रिरेव ।

वसन्तसेना—चेटी । क्व युष्माकं द्यूतकर ?

चेटी—आर्ये । वर्धमानक समादिश्य पुष्परण्डक जीर्णोद्यान गत  
आर्यचारुदत्त ।

वसन्तसेना—किं समादिश्य ?

चेटी—योजय राजावेव प्रवहण वसन्तसेना गच्छति ।

वसन्तसेना—चेटी । क्व मया गतव्यम् ?

चेटी—आर्ये । यत्र चारुदत्त ।

वसन्तसेना—( चेटीं परिष्वज्य ) चेटी । सुप्तु न निध्वातो रात्री । तदद्य  
प्रत्यक्षं प्रेक्षिष्ये । चेटी । किं प्रविष्टाहमन्यन्तरचतु  
शालम् ?

चेटी—न देवलमभ्यन्तरचतु शालकं सर्धजनस्य हृदयमपि प्रविष्टा ।

वसन्तसेना—अपि सन्तप्यते चारुदत्तस्य परिजन ?

चेटी—सन्तप्यते ।

वसन्तसेना—कदा ?

चेटी—यदा आर्या गमिष्यति ।

वसन्तसेना—तदा मया प्रथमं सन्तप्यम् । चेटी । गृहाणेमा रत्नापलीं  
मम भगिन्यै आर्याधृत्यायै गत्या समर्पय वक्तव्यं च—अहं  
श्रीचारुदत्तस्य गुणनिर्जिता दासी तदा युष्माकमपि ।  
तद्देया तत्रैव कण्ठाभरणं भवतु रत्नापली ।

चेटी—कोपिष्यति चारुदत्त आर्यायै वायत् ।

वसन्तसेना—गच्छ न कोपिष्यति ।

चेटी—( गृहीत्वा ) यदाहापयसि । ( इति निष्क्रान्ता )

९. 'अभिसारः'

चेटी—कथं अज्ज वि(वि) अज्जुआ ण विबुज्झदि । भोदु पविसिअ पबोधइस्सं ।

(इति नाट्येन परिक्रामति । ततः प्रविशत्याश्चादितशरीरा प्रमुप्ता वसन्तसेना)

चेटी—उत्थेदु उत्थेदु अज्जुआ पभादं संवुत्तं ।

वसन्तसेना—(प्रतिबुध्य) कथं रत्ति ज्जेव्व पभादं संवुत्तं ।

चेटी—अम्हाणं एसो पभादो अज्जुआए उण रत्ति ज्जेव्व ।

वसन्तसेना—हज्जे कहिं तुम्हाणं जूदिअरो ?

चेटी—अज्जुए बद्धमाणअं समादिसिअ पुप्फकरण्ढअं निण्णुज्जाणं गदो  
अज्जचारुदत्तो ।

वसन्तसेना—किं समादिसिअ ?

चेटी—जोएहि रादीए ज्जेव्व पवहणं वसन्तसेणा गच्छदु ति ।

वसन्तसेना—हज्जे कहिं मए गन्तव्वं ?

चेटी—अज्जुए जहिं चारुदत्तो ।

वसन्तसेना—(चेटीं परिध्वज्य) हज्जे सुट्टु ण णिज्झाइदो रादीए ता अज्ज  
पच्चक्खं पेक्खिस्सं । हज्जे किं पविट्ठा अहं अब्भन्तर-

चतुस्सालअ ?

चेटी—ण केवलं अब्भन्तरचतुस्सालअं सब्बजणस्स हिअअं पि पविट्ठा ।

वसन्तसेना—अवि(वि) सन्तप्पदि चारुदत्तस्स परिअणो ?

चेटी—सन्तप्पिस्सदि ।

वसन्तसेना—कदा ?

चेटी—जदो अज्जुआ गमिस्सदि ।

वसन्तसेना—तदो मए पढमं सन्तप्पिदव्वं । हज्जे गेण्ह एदं रअणावलिं ।

मम बहिणिआए अज्जाघूदाए गदुअ समप्पेहि, भणिदव्वं

च । अहं सिरीचारुदत्तस्स गुणणिज्जिदा दासो तदा तुम्हाणं

पि । ता एसा तुह ज्जेव्व कण्ठाहरणं होदु रअणावली ।

चेटी—कुप्पिस्सदि चारुदत्तो अज्जुआए दाव ।

वसन्तसेना—गच्छ ण कुप्पिस्सदि ।

चेटी—(गृहीत्वा) जं आणावे(वे)सि ।

( इति निष्क्रान्ता )

१. श्रो शूद्रक (५वीं शताब्दी) प्रणीत —गुन्डकटिक (Stenzler द्वारा सम्पादित तथा Bonnac से १८४७ ई० में प्रकाशित) पद्यम घंठ (पृ० ६२-६४) से उद्धृत ।

( संस्कृतच्छाया )

पुरुषः—आर्याः । अपि नामास्मिन्नुद्देशे सारथिद्वितीयो दृष्टो युस्माभिर्महाराजदुर्योधनो न वेति । कथं न कोऽपि मन्त्रयते । भवत्वेतेषां बद्धपरिफराणां पुरुषाणां समूहो दृश्यत इत्यत्र गत्वा प्रक्ष्यामि । ( विलोक्य ) कथमेते स्वस्वामिनो गाढप्रहाराहतस्य घनसन्नाहजालदुर्भेद्यमुखैः कङ्कपत्रैर्हृदयाच्छ्रल्यान्युद्धरन्ति । तत्रैतन्वेते न जानन्ति । भवत्वन्यतो विचेष्यामि । इमे रत्नपरे प्रभूतरा संकलिता वीरमानुषा । अत्र गत्वा प्रक्ष्यामि । ( उपगम्य ) अहो जानीथ कस्मिन्नुद्देशे कुरुनाथो वर्तत इति । कथमेतेऽपि मा दृष्ट्वा अधिकतरं रुदन्ति । ( दृष्ट्वा ) तत्र रत्नवेतेऽपि जानन्ति । हा दुष्परं रत्नवन्न वर्तते । एषा वीरमाता समरविनिहत पुत्रकं श्रुत्वा रक्षाशुकनिवसनया बध्ना सहानुघ्नियते । साधु वीरमाता साधु । अन्यस्मिन्नपि जन्मान्तरेऽनिहत पुत्रमा भविष्यसि । भवत्वन्यतो विचेष्यामि । ( अन्यतो विलोक्य ) अयमपरो बहुप्रहारनिहतकायोऽकृतव्रणप्रतीकार एव योधसमूहस्तिष्ठति । इमं शून्यासनतुरंगममुपालभ्य रोदिति । नूनमेतेषामत्रैव स्वामी व्यापादित इति । तत्र रत्नवेतेऽपि जानन्ति । भवत्वन्यतो गत्वा प्रक्ष्यामि । ( सर्वतो विलोक्य ) कथं सर्वं एवात्रस्थानुरूप व्यसनमनुभवन् भागवेयविमुखतया पर्याकुलो जन । तस्मिन् प्रक्ष्यामि कथोपालप्स्ये । भवतु स्वयमेवात्र विज्ञास्यामि । ( परिक्रम्य ) भवतु देवमेवेदानीमुपालप्स्ये । अहो देव ! एकादशानामक्षीहिष्णीना नाथो ज्येष्ठो भ्रातृशतस्य भर्ता गाङ्गेयद्रोणाङ्गराजशल्यट्टपकृतवर्माशरस्थामप्रमुखस्य राजचक्रस्य सत्त्वपृथिवीमण्डलैकनाथो महाराजदुर्योधनोऽप्यन्विष्यते, न जाने कस्मिन्नुद्देशे स वर्तत इति ।

१०. समराङ्गणम्<sup>१</sup>

पुरुष.—अज्जा ! अबि(वि)णाम इमस्सि उद्देसे सारहिदुदीओ दिट्ठो तुम्हेहिं महाराअदुज्जोहणो ण वेत्ति । कह ण को वि (वि) मन्तेदि । होदु, एदाण बद्धपरिअराणं पुरिसाण समूहो दीसइ ति एत्थ गदुअ पुच्छिस्सं । (विलोक्य) कहं एदे सस्सामिणो गाढप्पहारा-हदस्स घणसणाहजालदुब्भेज्जमुहेहिं कङ्कव(व)त्तेहिं हिअआदो सल्लाई उद्धरन्ति । ता खु एदे ण जाणन्ति । होदु, अण्णदो विचिणइस्स । इमे क्खु अव(व)रे प्हददरा संकलिदा वीरमाणुसा । एत्थ गदुअ पुच्छिस्स (चपगम्य) हहो जाणह कस्सि उद्देसे कुरुणाहो वट्ठइ ति । कह एदे त्रि(त्रि)म देक्खिअ अहिअदर रोअन्ति । (दृष्ट्वा) ता ण हु एदे वि(वि) जाणन्ति । हा दुक्करं क्खु एत्थ वट्ठइ । एसा वीरमादा समलविणिहद पुत्तअं सुण्णिअ रत्तंसुअणि-वसणाए व्हए सह अणुमरदि । (सश्लाघम) साहु वीरमादे साहु, अण्णास्सि वि(वि) जग्मन्तरे अणिहदपुत्तआ हुविस्ससि । होदु अण्णदो विचिणइस्स ।

(अथतो विलोक्य) अअ अन(व)रो बहुप्पहारणिहदकाओ अक्रिदन्वणप्पडीआरो एव्व जोहसमूहो चिट्ठइ । इम सुण्णासण तुलगमं उवा(वा)लहिअ रोइदि । णूण एदाण एत्थ एव्व सामो वावा(वा)दिदो ति । ता ण हु एदे त्रि(वि) जाणन्ति । होदु, अण्णदो गदुअ पुच्छिस्स । (सर्वतो विलोक्य) कह सर्वो एव्व अवत्थाणुरूव(व) विसणं अणुहवन्तो भाअपेअविमुहदाए पज्जाउलो जणो । ता क एत्थ पुच्छिस्स क वा उवा(वा)लहिस्स । भोटु सअ एव्व एत्थ विआणिस्स । (परिक्रम्य) देव्व एव्व दाणि उवा(वा)लहिस्सं । हंहो देव्व ! एआदसाण अक्खोहिणीण णाहो जेट्ठो भादुसअस्स भत्ता गङ्गेयद्दोणअङ्गराअसल्लकिअ(व)क्रिदवम्मअस्सत्थामप्पमुहस्स राअक्कक्कस्स सअलपहुवीमण्डलेक्कणाहो महाराअदुज्जोहणो वि(वि)अण्णेसीअदि, ण जाणे कस्सि उद्देसे सो वट्ठइ ति ।

१—श्री भट्टनारायण (८वीं शताब्दी) प्रणीत-वेणोसहार (Julius Grill द्वारा सम्पादित एव Leipzig से १८७१ में प्रकाशित) के चतुर्थ अंश (पृष्ठ ५८-५९) से उद्धृत ।

( सस्कृतच्छाया )

राजा—सत्यं विचक्षणं विचक्षणं चतुरत्वेनोक्तीनां विचित्रतया रीतीनाम् ।  
 । तत्किमन्यत् । कविचूडामणित्वे स्थिता एषा ।

विदूषकः—( सक्लोषम् तदृज्वेव किं न भण्यते अत्युत्तमा विचक्षणं  
 काव्येऽत्यधमं कपिञ्जलो ब्राह्मण इति ।

विचक्षणा—आर्यं मा कुप्य ! काव्यमेव ते कवित्वं पिशुनयति । यतो  
 कान्तारञ्जननिन्दनीयेऽप्यर्थे सुकुमारा ते वाणी लम्बस्तन्या  
 इवैफायली तुन्दिलाया इव वञ्चुलिका काणाया इव  
 वञ्जलशालाका न सुष्ठुतर रमणीया ।

विदूषकः—तव पुंना रमणीयेऽप्यर्थे न सुन्दरा शब्दावली । कनककटिसूत्र  
 इव लोहकिंकिणीमाला, प्रतिपट्ट इव त्रसरविरचना, गौराङ्गथा  
 इव चन्दनचर्चा, न चङ्गत्वं अवलम्बते । तथापि त्वं वर्ण्यसे ।

विचक्षणा—आर्य ! मा कुप्य ! का युष्माभि सह प्रतिस्पर्धा ? यतस्त्वं  
 नाराच इव निरक्षरोऽपि रत्नतुलाया नियुज्यसे । अहं  
 पुनस्तुलेव लब्धाक्षरापि न सुवर्णतोलने नियुज्ये ।

विदूषकः—एवं मां हसन्त्यास्तव वामं दक्षिणं च युधिष्ठिरज्येष्ठभ्रातृ-  
 नामधेयमङ्गं भटिति उत्पाटयिष्यामि ।

विचक्षणा—अहमप्युत्तराफाल्गुनीपुर सरनक्षत्रनामधेयमङ्गं तव भटिति  
 खण्डयिष्यामि ।

राजा—वयस्य ! मैवं भण । कवित्वे स्थितैषा ।

विदूषकः—( सक्लोषम् ) तदृज्वेव किं न भण्यते अस्माकं चेदिना  
 हरिवृद्धनन्दिवृद्धपोट्टिशहालप्रभृतीनामपि पुरतः सुकविरिति ?  
 ( इति परिक्रामति )

११. परिहासविजल्पितम्

राजा—सच्चं विअक्खणा विअक्खणा चतुरत्तणेण उचीण विचित्ताए  
रीदीणं । ता किं अण्ण कइचूडामणित्ते ठिटा एसा ।

विदूषक —( सक्कोषम् ) ता उज्जुअ जेव किं ण भणीअदि अच्चुत्तमा  
विअक्खणा कब्बम्मि अच्चहमो कविज्जलो बम्हणो त्ति ।

विचक्षणा—अज्ज मा कुप्प । कब्ब जेव दे कइत्तणं पिसुणेदि । जदो  
कन्तारत्तणणिन्दणिज्जे वि अत्थे सुउमारा दे वाणी लम्बत्थणीए  
विअ एक्कावली तुन्दिलाए विअ कञ्चुलिआ काणाए विअ  
कज्जलसलाआ ण सुट्टुदर रमणिज्जा ।

विदूषक —तुज्झ उण रमणिज्जे वि अत्थे ण , सुन्दरा सद्दावली । कण-  
अकडिसुत्तए विअ लोहकिङ्किणीमाला पडिवट्टए विअ तसर-  
विरअणा गोरङ्गीए विअ चन्दणचच्चा ण चङ्गत्तणं अवलम्बेदि ।  
तथा वि तुम वण्णीअसि ।

विचक्षणा—अज्ज मा कुप्प । का तुम्हेहिं सम पाडिसिद्धी । जदो  
तुम णाराओ विअ णिरक्खरो वि रदणतुलाए णिउञ्जी-  
असि । अह उण तुला विअ लद्धक्खरा वि ण सुवण्णतुलणे  
णिउञ्जीआमि ।

विदूषक —एवं म हसन्तीए तुह वाम दक्खिण च जुहिट्टिरजेट्टभादरणामहेअ  
अङ्ग तडत्ति उप्पाडइस्स ।

विचक्षणा—अह पि उत्तरफग्गुणीपुरस्सरणक्खत्तणामहेअं अङ्गं तुह तडत्ति  
खण्डिस्स ।

राजा—वअस्स मा एव भण । कइत्तणे ठिटा एसा ।

विदूषक —( सक्कोषम् ) ता उज्जुअ जेव किं ण भणीअदि अम्हाणं  
चेडिआ हरिउट्टुणन्दिउट्टुपोट्टिसहालप्पहुदीण पि पुरदो सुकइ त्ति ।  
( इति परिक्रामति )

१ महाकवि राजशेखर (नवौ शताब्दो) विरचित—कपूर्वमथरो (Sten Konow  
द्वारा सम्पादित तथा मोतीलाल बनारसीदास बगलौ रोड, जवाहरनगर,  
दिल्ली-६ द्वारा प्रकाशित ) के प्रथम जवनिका पु० १६-१९ से उद्धृत ।

## ( संस्कृतच्छाया )

विचक्षण—( विहस्य ) तत्र गच्छ यत्र मे प्रथमशाटिका गता ।

विदूषकः—( वलितग्रीवम् ) त्वं पुनस्तत्र गच्छ यत्र मे मातुः प्रथमा दन्तावली गता । ईदृशस्य राजकुलस्य भद्रं भवतु, यत्र चेटिका ब्राह्मणेन समं समशीर्षिकया दृश्यते, मदिरा पञ्चगव्यं चैकस्मिन् भाण्डे क्रियते, काचं माणिक्यं च सममाभरणे प्रयुज्यते ।

विचक्षणा—इह राजकुले तत्ते भवतु कण्ठस्थितं यद्भगवांस्त्रिलोचनः शीर्षं समुद्ब्रह्ति । तेन च ते मुखं चूर्ण्यतां येनाशोक्तसु-  
दोहदं लभते ।

विदूषकः—आः दास्याः पुत्रि ! टेण्टाकराले ! कोससदचट्टणि ! रथ्या-  
लोट्टणि ! एवं मां भणसि । तन्मम महाब्राह्मणस्य वचनेन तत्त्वं  
लभ यत्फाल्गुनसमये शोभाञ्जनो दोहदं लभते यच्च  
। पामरेभ्यो वलीवर्दो लभते ।

विचक्षणा—अहं पुनस्तवेवं भणतो नूपुरस्येव पादलग्नस्य पादेन मुखं  
चूर्णयिष्यामि । अन्यच्च उत्तरापादानक्षत्रनामधेयमङ्गयुगल-  
मुत्पात्र्य क्षेप्यामि ।

विदूषकः :- ( सक्रोधं पङ्कामति जवतिकान्तरे किञ्चिदुच्चैः ) ईदृशं राजकुलं  
दूरे वन्द्यते, यत्र दासी ब्राह्मणेन समं प्रतिस्पर्धां करोति ।  
तदद्यप्रभृति निजवसुन्धराब्राह्मण्याश्चरणशुश्रुपुंभूत्वा गृह  
एव स्थास्यामि ।

( सर्वे हसन्ति )



१२. कपट प्रतिस्पर्द्धा<sup>१</sup>

विचक्षणा — ( विहस्य ) तर्हि गच्छ जर्हि मे पढमसाहुलिया गदा ।

विदूषक — ( वलितप्रोवम् ) तुम उग तर्हि गच्छ जर्हि मे मादाए पढमा दन्तावली गदा । ईदिसस्स राअउलस्स भद् भोदु जर्हि चेडिआ वम्हणेण समसीसिआए दीसदि मइरा पञ्चगव्व च एक्कास्सि भण्ढए करीअदि कच्च माणिकक च सम आहरणे पउञ्जीअदि ।

विचक्षणा—इध राअउले त दे भोदु कण्ठट्टिद ज भअव तिलोअणो सीसे समुञ्जहदि तेण अ दे मुहं चूरीअदु जेण असोअत्तम् दोहल ल्हदि ।

विदूषक—आ दासीए पुत्ति टेष्णाकराले कोससदचट्टिणि रच्छालोट्टिणि एव मे भणासि । ता मह महानम्हणस्स वअणेण त तुमं ल्ह जं फग्गुणसमए सोहञ्जणो दोहल ल्हदि ज च पामराहितो गल्लिवइल्लो ल्हदि ।

विचक्षणा—अहं उण तुह एवं भणन्तस्स णेउरस्स विअ पाअलम्मास्स पाएण मुहं चूरइस्सं । अण्ण च उत्तरासाढापुस्सरणक्खत्त-णामहेअं अङ्गुअल उप्पाट्टिअ घट्टिम्स ।

विदूषक — ( सम्भोधं परिश्रामति जवनिवातरे विविदुष्यं ) ईदिस राअउलं दूरे वन्दीअदि जर्हि दासी वम्हणेण सम पाडिमिद्धि करेदि । ता अज्जप्पहुदि णिअवमुधरावम्हणीण चल्णमुम्सओ भविअ परे ज्जेव चिट्ठिस्स ।

( सर्वे हसन्ति )

१ महाकवि रात्रयेणर रित्तिता एषं Sten Konow द्वारा सम्पादित  
कपूर्वमद्यये ये पृ० १६-२२ मे उद्धृत ।

## मागधी प्राकृत

### प्रमृस विशेषताएँ

#### सरलव्यञ्जन-परिवर्तन

ज > य, जनपद = यणवदे, जानाति = चाणदि ।

र > ल, पुरुष = पुलिशे, राक्षस = लरुशे ।

प, स > श, माप = माशे, हंस = हशे ।

#### संयुक्तव्यञ्जन-परिवर्तन

क्ष > स्क, राक्षस = लरुशे, दक्ष = दस्के ।

ज्ञ, ज्ञ, ण्य, न्य > ज्ञ, प्रज्ञाविशाल = पञ्चाविशाले, अञ्जलि = अञ्जली,

पुण्यवान् = पुञ्जवन्ते, अभिमन्यु\* = अहिमञ्जू ।

च्छ > श्च, गच्छ = गश्च, पृच्छति = पुश्चदि ।

द्य व्य, मद्य = मय्य ।

ट्ट, ष्ट > स्ट, भट्टारिका = भस्टालिका, सुष्टु = शुस्टु ।

र्य, र्ज > र्य, कार्यम् = कय्ये, दुर्जन = दुय्यणे ।

स्थ<sup>१</sup> र्थ > स्त उपस्थित = उवस्तिदे, सार्थवाह = शस्तवाहे ।

प, स् + व्यञ्जन = स् + व्यञ्जन, कष्टम् = कस्ट, विष्णु = विस्नुं, विस्मय  
= विस्मये ।

#### शब्दरूप

अ + सु ( विभक्ति प्रत्यय ) > ए + सु, पुरुष = पुलिशे, मेप = मेशे ।

उस् > आह, भगदत्तशोणितस्य कुम्भ = भगदत्तशोणिदाह कुम्भे ।

आम् > आहँ, कर्मणा = कम्माहँ, युष्माकम् = तुम्हाहँ ।

#### आदेश

अहम् > हके, हगे, अहके, अहं भणामि = हके, हगे, अहके भणामि ।

तिष्ठ > चिष्ठ, तिष्ठ रे = चिष्ठ ले, तिष्ठति = चिष्ठदि ।

द्रष्टव्य—हेमचन्द्र इति—प्राकृत व्याकरण ८।४।२८७—३०२ तक एव वररुचि  
कृत—प्राकृत प्रकाश—एकादश परिच्छेद ।

शृगाल > शिआल, शिआलक, शृगाल आगच्छति = शिआले, शिआलके आगच्छदि ।

हृदय > हडक, हृदये आदरो मम = हडकके आलले मम ।

**कृदन्त**

क > ङ ( केवल डुकृब्, मृङ् गम्ल धातु से क्त को ), कृत = कडे,  
मृत = मडे, गत = गडे ।

क > दु, हसित = हशिदु, हशिदे ।

क्त्वा > दाणि, सोद्वा गत = शहिदाणि गडे, कृत्वा आगत = करिदाणि आअडे ।

( शेष नियम शौरसेनी प्राकृत के समान )

## ( संस्कृतच्छाया )

( ततः प्रविशति नागरिकः श्यालः पश्चाद्बद्धपुरुषमादाय रक्षिणौ च )

रक्षिणौ— ( ताडयित्वा ) अरे कुम्भीलक ! कथय । कुत्र त्वयैतन्मणि-  
बन्धनोत्कीर्णनामधेयं राजकीयमद्भुतीयकं समासादितम् ?

पुरुष — ( भोति नाटितकेन ) प्रसीदन्तु भावमिश्रा । अहं नेटशकर्मकारी ।

प्रथम — किं खलु शोभनो ब्राह्मण इति कृत्वा राज्ञा प्रतिग्रहो दत्तः ?

पुरुष — शृणुतेदानीम् । अहं शक्रावताराभ्यन्तरवासी धीवरः ।

द्वितीय — पाटच्चर ! किमस्माभिर्जाति पृथा ?

श्याल — सूचक ! कथयतु सर्वमनुक्रमेण । मैनमन्तरा प्रतिवध्नीतम् ।

उभौ — यदावुत्त आज्ञापयति । कथय ।

पुरुष — अहं जालोद्गारादिभिर्मत्स्यबन्धनोपाये कुटुम्बभरणं करोमि ।

श्याल — ( विहस्य ) विशुद्ध इदानीमाजीव ।

पुरुष — भर्त ! मैव भण ।

सहजं किल यद्विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम् ।

पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पासृदुरेव श्रोत्रियः ॥

श्याल — ततस्ततः

पुरुष — एकस्मिन्दिवसे खण्डशो रोहितमत्स्यो मया कल्पितो यावत् ।  
तस्योदराभ्यन्तर एतद्रत्नभासुरमद्भुतीयकं दृष्टम् । पश्चाद्द्वयस्य  
विक्रयाय दर्शयन्गृहीतो भावमिश्रैः । मारयत वा मुञ्चत वा ।  
अयमस्यागमवृत्तान्तः ।

## १३ प्रत्ययभिज्ञानकम्<sup>१</sup>

( तत प्रविशति नागरिक श्याल पश्चादबद्धपुरुषमादाय रक्षिणी च )

रक्षिणी—( ताडयित्वा ) अले कुम्भिलआ । कहेहि, कहिं तुए एरो  
मणिन्धणुकिरणणमहेए लअक्रीए अङ्गुलीअए शमाशादिए १  
पुरुष —( मोति नाटित्वेन ) पशीदन्ते(न्तु) भावमिश्रो(इशा) । अहके ण  
ईदिशकम्मकाली ।

प्रथम —किं खु शोहणे धम्हणे ति कलिअ लण्णा पडिगगहे दिण्णे २

पुरुष —शुणुह दाणिं । अहके शक्कापदालब्भन्तलपशी धीवले ।

द्वितीय —पाडच्चला । किं अम्हेहिं जादी पुच्छिदा २

श्याल<sup>२</sup>—सूअअ ! कहेदु सञ्च अणुक्कमेण । मा ण अन्तरा पडिवन्धह ।

उभौ—य आवु(वु)त्ते आणवे(वे)दि । कहेहि ।

पुरुष —अहके जालुग्गालादीहिं मच्छवन्धणोवा(वा)एहिं कुडुम्बमलण  
कलेमि ।

श्याल —( विहस्य ) विमुद्धो दाणिं आजीपो ।

पुरुष —भट्टा मा एव्व भण ।

शहजे किल जे विणिन्दिए ण हु दे कम्म विवज्जणीअए ।

पशुमारणकम्मदालुणे अणुक्कामिदु एव्व शोत्तिए ॥

श्याल —तदो तदो ।

पुरुष —एक्कशिश दिअशो खण्डशो लोहिअमच्छे मए कप्पिदे जाव ।

तश्श उदल्लब्भन्तले एद लदणभाशुल अङ्गुलीअअं देस्सिअ ।

पच्छा अहके शे विक्कआअ दशअन्ते गहिदे भावमिश्रोहिं ।

मालेह वा, मुञ्चेह वा, अअ शे आअमवुत्तन्ते ।

१ महाकवि कालिदास ( ४ शताब्दी ) विरचित-धमिनानशाबुन्तत ( Monier Williams द्वारा सम्पादित एव भाक्सकोट से १८७६ में प्रकाशित ) चतुर्थ अंक के सिन्धु ( पृ० २१७ २२१ ) से उद्धृत ।

२ रामान द्वारा धीरसेनी भाषा का प्रयोग किया गया है ।

## ( संस्कृतच्छाया )

( ततः प्रविशत्याद्भीवरहस्तो भिक्षुः )

भिक्षुः—अज्ञाः ! कुरुत धर्मसञ्चयम् ।

संयच्छत निजोदरं नित्यं जागृत ध्यानपटहेन ।

विपमा इन्द्रियचौरा हरन्ति चिरसञ्चितं धर्मम् ॥

अपि च—

अन्तियतया प्रेक्ष्य केवलं तावद्धर्माणां शरणमस्मि ।

पञ्चजना येन मारिता. क्षियं मारयित्वा ग्रामो रक्षित ।

अवलश्च चाण्डालो मारितोऽवश्यं स नरः स्वर्गं गाहते ॥

शिरो मुण्डितं तुण्डं मुण्डितं चित्तं न मुण्डितं किं मुण्डितम् ।

यस्य पुनश्च चित्तं मुण्डितं साधु सुष्ठु शिरस्तस्य मुण्डितम् ॥

गृहीतस्पायोदकमेतच्चीवरं, यावदेतत् राष्ट्रियश्याल-  
कस्योद्याने प्रविश्य पुष्करिण्यां प्रक्षाल्य लघु लघु अपक्रमिष्यामि ।

( इति परिक्रम्य तथा करोति )

( नेपथ्ये ) तिष्ठ रे दुष्टश्रमणक ! तिष्ठ तिष्ठ ।

भिक्षु — (दृष्ट्वा सभयम्) ही अविद् ही मानवाः । एष स राजश्याल-  
सस्थानक आगतः । एकेन भिक्षुणा अपराधे कृते, अन्यमपि  
यत्र यत्र भिक्षु पश्यति तत्र तत्र गामिव नासां विद्ध्वा  
अपवाहयति । तत् कुत्राशरणं शरणं गमिष्यामि ? अथवा  
भट्टारक एव बुद्धो मे शरणम् ।

( प्रविश्य सलङ्गेन वितेन सह )

शकार — तिष्ठ रे दुष्ट श्रमणक ! तिष्ठ । आपानकमध्यप्रविष्टस्येव  
रक्तमूलकस्य शीर्षं ते मोटयिष्यामि ।

( इति ताडयति )

## १४. घट्टुकुट्यां प्रभातम्<sup>१</sup>

( ततः प्रविशत्याद्रं चोवरहस्तो भिक्षुः )

भिक्षुः—अज्जा । कलेष घम्मशञ्चअं ।

शञ्जम्मघ णिअपोटं णिच्चं जग्गेघ ज्ञाणपडहेण ।

विशमा इन्दियचोला हलन्ति चिलशच्चिदं घम्मं ॥

अग्नि(वि)अ—

अणिच्चद्रापे पेत्तिअ णवल दाव घम्माण शरणं हि ।

पञ्चज्जण जेण मालिन्ना इत्थिअ मालिअ ना(गा)म लक्खिदे ।

अव(व)ले अ चण्डाल मालिन्ने अवशं शे णल शग्ग गाहदि ॥

शिल मुण्डिदे तुण्ड मुण्डिदे चित्त ण मुण्डिदे कीश मुण्डिदे ।

नाह उण अ चित्त मुण्डिदे, शाहु, शुश्ट(स्ट) शिल ताह मुण्डिदे ॥

गिहिदकशाओदए एशे चीवले, जाव एदं लसि(सि)अशालकाह

केलके उज्जाणे पविशिअ पोस्खलिणीए पक्खालिअ लहुं लहुं

अव(व)अकमिदश ।

( परिब्रम्य तथा करोति )

( नेपथ्ये ) चिस्ट(ष्ट) ले दुश्ट(स्ट) शमणका । चिस्ट(ष्ट) चिस्ट(ष्ट) ।

भिक्षु — ' दृष्ट्वा समयम् ' ही अविद ही माणहे । एशे शे लअशा-

लशण्ठाणे आअदे एक्केण भिक्खुणा अव(व)लाहे किदे अण्णं पि

जहिं जहिं भिक्खुं पेक्खदि तहिं तहिं गोणं व्व णाशं

भिन्दिअ ओवाहेदि । ता कहिं अशरणे शरणं गमिदशं ?

अथवा भश्टा(स्ट)लके ज्जेअ बुद्धे मे शरणे ।

( प्रविश्य सबङ्गेन त्रितेन सह )

शकार — चिस्ट(ष्ट) ले दुश्ट(स्ट) शमणका चिस्ट(ष्ट) चिस्ट(ष्ट) । आवा(वा)

णअमज्झपविश्ट(स्ट)श विअ लत्तमूलअश शीशं ते मोडइशं ।

( इति ताडयति )

१ शूद्रक ( ५ वीं शताब्दी ) विरचित-मूच्छकटिक ( Stenzler द्वारा सम्पादित तथा Bonn 18 से १८४७ ई० में प्रकाशित ) के अष्टम अंक ( पृ० ११०-११३ ) से उद्धृत ।

## ( संस्कृतच्छाया )

शकारः—आत्मपरित्राणे भायो गतोऽदर्शनम् । चेटमपि प्रासादवालाप्र-  
प्रतोलिकायां निगडपूरितं कृत्वा स्थापयिष्यामि । एवं मन्त्रो  
रक्षितो भवति । तद् गच्छामि, अथवा पश्यामि एतां, किमेपा  
मृता ? अथवा पुनरपि मारयिष्यामि । ( अवलोक्य ) कथं  
सुमृता । भवतु एतेन प्रावारकेण प्रच्छादयाम्येनाम् । अथवा  
नामाङ्कित एषः, तत्कोऽपि आर्यपुरुषः प्रत्यभिज्ञास्यति । भवतु  
एतेन वातालीपुञ्जितेन शुष्कपर्णपुटेन प्रच्छादयामि । ( तथा  
कृत्वा विचिन्त्य ) भवतु एवं तावत्, साम्प्रतमधिकरणं गत्वा  
व्यवहारं लेखयामि, यथा अर्थस्य कारणात् सार्थवाहपुत्रचारु-  
दत्तकेन मदीयं पुष्पकरण्डकं जीर्णोद्यानं प्रविश्य वसन्तसेना  
व्यापादितेति ।

चारुदत्तविनाशाय करोमि कपटं .नवम् ।

नगर्यां विशुद्धायां पशुघातमिव दास्याम् ।

( इति निष्क्रम्य दृष्ट्वा सभयम् )

अविदमादिके । येन येन गच्छामि मार्गेण तेनैवेप दुष्ट-  
श्रमणको गृहीतकपायोदकं शीघ्रं गृहीत्वा आगच्छति । एष  
मया नसि छित्त्वा वाहितः कृतवैरः कदापि मां प्रेक्ष्येतेन मारितेति  
प्रकाशयिष्यति । तत्कथं गच्छामि । ( अवलोक्य ) भवतु,  
एतमर्धपतितं प्राकारखण्डमुल्लङ्घ्य गच्छामि ।

एषोऽहं त्वरितत्वरितो लङ्कानगर्यां गगने गच्छन् ।

भूम्यां पाताले हनूमच्छिखर इव महेन्द्रः ॥

( इति निष्क्रान्तः )



१५. दुर्वृत्तवृत्तम्<sup>१</sup>

शकारः—अत्तपलिताणे भावे गदे अदंशणं चेडे वि(वि) पाशादबालगपदो  
 लिजाए णिअलपूलिदं कदुअ थाव(व)इइश । एवं मन्ते लक्खिदे  
 भोदि । ता गच्छामि, अघवा पेत्तखामि एदं किं एशा मला  
 आदु पुणो वि(वि) मालइइश । ( भवलोक्क ) कथं शुमला ।  
 भोदु एदिणा पावालेण पच्छादेमि ण । अघवा णामङ्किदे  
 एशे ता के वि(वि) अज्जपुलिशे पच्चहिजाणेदि । भोदु  
 एदिणा वादालीपुञ्जिदेण शुक्खपण्णपुडेण पच्छादेमि ।  
 ( तथा कृत्वा विचिन्त्य ) भोदु एवं दाव । शम्पदं अधिअल्लणं  
 गच्छिअ ववहालं लिहावे(वे)मि । जघा अत्थइइश कालणादो  
 शट्ठवाहपुत्तचालुदत्ताकेण मम केलक पुप्फकलण्डकं जिण्णुज्जाण  
 पवेशिअ वशन्तशेणिआ वाना(वा)दितेत्ति ।

चालुदत्तविणाशाय कलेमि कव(व)ड णव ।

णअलीए विशुद्धाए पशुघादं व्व दालुणं ॥

भोदु गच्छामि ( इति निष्क्रम्य दृष्ट्वा सभयम् )

अविद मादिके ! जेण जेण गच्छामि मग्गेण तेण ज्जेव्व एशे  
 दुश्ट(स्ट)शमणके गहिदकशाओदकं चीवलं रोप्पिअ आगच्छदि ।  
 एशे मए णइशअवाहिदे कदवेले कदावि(वि) मं पेक्खिअ  
 एदेण मालिद ति पआशइइशदि । ता कथं गच्छामि  
 ( भवलोक्क ) भोदु एद अद्धपडिद पाआलखण्ड उल्लङ्घिअ गच्छामि ।

एशे म्हि तुलिदतुलिदे लङ्काणअलीए गअण गच्छन्ते ।

भूमोए पाआले हणूमशिहले त्रिअ महेन्दे ॥

( इति निष्क्रान्त )

१. शूद्रक द्वारा विरचित—मुच्छ्रवटिक (Stenzler द्वारा सम्पादित) के अष्टम  
 अंक ( पृ० १३२-१३३ ) से उद्धृत ।

( संस्कृतच्छाया )

मांसेन तिक्ताम्लेन भक्तं शाकेन सूपेन समत्स्यवेन ।  
भुक्तं मया आत्मनो गृहे सादृश्यकूरेण गुडोदनेन ॥

(कर्णं दत्त्वा) भिन्नकास्यरत्नणाया चाण्डालवाचायाः स्वर-  
संयोगो यथा चैप उदगीतो वध्यडिण्डिमशब्द पटहाना च श्रूयते  
तथा तर्कयामि दरिद्रचारुदत्तको वध्यस्थानं नीयत इति । तत् प्रेक्षिष्ये ।  
शत्रुविनाशो नाम महान् हृदयस्य परितोपो भवति । श्रुत च मया  
योऽपि किल शत्रुं व्यापाद्यमान पश्यति तस्यान्यस्मिञ्जन्मान्तरेऽक्षि  
रोगो न भवति । मया यत्तु विषमन्थिगर्भप्रविष्टेनेव कीटकेन किमप्यन्तरं  
मृग्यमाणेनोदपादितस्तस्य दरिद्रचारुदत्तस्य विनाश । साम्प्रतमात्मीयाया  
प्रासादबालाप्रप्रतोलिकायामधिरुह्यात्मन पराक्रम पश्यामि । (तथा कृत्वा  
दृष्ट्वा च) ही ही एतस्य दरिद्रचारुदत्तस्य वध्य नीयमानस्य  
एतावान् जनसम्मर्दो, यस्या वेलायामस्मादृश प्रवरो वरमनुष्यो वध्य  
नीयते तस्या वेलाया कीदृश (कीदृशो) भवेत् । (निरीक्ष्य) कथमेप स  
नववलीवर्द इव मण्डितो दक्षिणां दिश नीयते । अथ मदीयाया  
प्रासादबालाप्रप्रतोलिकाया समीपे घोषणा निपतिता निवारिता च ।  
(विलोक्य) कथं स्थावरकचेटोऽपि नास्तीह । मा नाम तेनेतो गत्या  
मन्त्रभेद कृतो भूयते (भविष्यति) । तद्यावदेनमन्वेपयामि ।

( इत्यवतीर्षोपसर्पति )

## १६. कापटिक-प्रलापः<sup>१</sup>

शकार — ( सहस्रम् )

मशेण तिवखावि(वि)लकेण भत्ते शाकेण शूरेण शमच्छकेण ।  
मुत्त मए अत्तणअदश गेहे शालिश्शकूलेण गुलोदणेण ॥

( कर्णं दत्त्वा ) मिण्णकशखखणाए चण्डालनाआए शलशजोए जथा  
अ एशे उअखालिदे वज्झडिण्डिमशद्दे पडहाण अ शुणीअदि तथा तक्केमि  
दलिद्दचालुदत्ताके वज्झट्टाण णीअदि ति । ता पेक्खिश्श । शत्तु-  
विणाशे णाम महन्ते हलअदश पलिदोशे होदि । शुद च मए जे वि(वि)  
क्किं शत्तु वावा(वा)अअन्त पेक्खदि तदश अण्णदिश जम्मन्तले अक्खिलोगे  
ण होदि । मए क्खु विशगण्ठिगढभविश्टे(स्टे)ण विअ कीडएण किं पि  
अन्तल मगमाणेण उप्पाडिदे ताह दलिद्दचालुदत्ताह विणाशे । शम्पद  
अत्तणकेलिकाए पाशादवालग्गपदोलिकाए अहिलुहिअ अत्तणो पलकमं  
पेक्खामि । ( तथा कृत्वा दृष्ट्वा च ) ही ही एदाह दलिद्दचालुदत्ताह वज्झ  
णीअमाणाह एवद्धे जणशम्मदे ज वेल अग्गालिशे पपले चलमणुश्शे  
वज्झ णीअदि त वेल कीदिश भवे । ( निरीक्ष्य ) कध एशे शे णववल्लुके  
पिअ मण्णिदे दक्खिण दिश णीअदि । अघ किण्णिमित्त मम केलिकाए  
पाशादवालग्गपदोलिकाए शमीवे(वे) घोशणा णिअ(व)डिदा णिवाल्लिदा अ ।  
( विलोक्य ) कध थावल्लुकेडे वि(वि) णत्थि इध । मा णाम तेण इदो  
गदुअ मन्तमेदे कडे मणीअदि । ता जाव ण अण्णेशामि ।

( इति अवतोर्योपसपति )

१. मूद्रक विरचित-भुञ्जकटिक ( Stenzler द्वारा सम्पादित ) के दशम अंक  
( पृष्ठ १६३-१६४ ) से उद्धृत ।

## ( संस्कृतच्छाया )

राक्षसी—( विकृत विहृत्य सपरितोषम् )

हतमानुषमांसभोजनं कुम्भसहस्रवसाभिः सचितम् ।  
अनिशं च पिबामि शोणितं वर्षशतं समरो भविष्यति ॥

( नृत्पन्तो सपरितोषम् ) यदि सिन्धुराजवधदिवस इव समरकर्म  
प्रतिपद्यतेऽर्जुनस्ततश्च पर्यन्तभरितकोष्ठागारं मांसशोणितैर्मे गृहं  
भूयते ( भवति ) । ( परिक्रम्य दिशोऽवलोक्य ) अथ क्व नु  
रुधिरप्रियो भूयते ( भवति ) । तद्यावदस्मिन्समरे प्रियभर्तार  
रुधिरप्रियमन्विष्यामि । ( परिक्रम्य ) भवतु शब्दापयिष्यामि  
तावत् । रुधिरप्रिय ! रुधिरप्रिय ! इत एहीत एहि ।

( ततः प्रविशति तथाविधो राक्षस )

राक्षस—( श्रम नाटयन् )

प्रत्यग्रहतानां मांसकं यद्युष्णं रुधिरं च लभते ।  
तद्देप मम परिश्रमः क्षणमात्रमेव लघु नश्यति ॥

( राक्षसी पुनर्व्याहरति )

राक्षसः—( आकर्षणं ) अरे क एष मां शब्दापयति ? ( विलोक्य ) अरे  
कथं वसागन्धा । ( उपसृत्य ) वसागन्धे मां किं शब्दापयसि ?

राक्षसी—रुधिरप्रिय ! एतत् खलु तव कारणात्प्रत्यग्रहतस्य कस्यापि  
राजर्षे शरीरावयवप्रभूतं प्रभूतवसाग्नेहचिक्रण कोष्णं रुधिरम  
प्रमांस चानीतं तत्पिबैनत् ।

राक्षस —( सपरितोषम् ) साधु वसागन्धे साधु, शोभनं कृतं त्वया बली-  
योऽस्मि पिपासित एतत्कोष्णं रुधिरमानीतम् ।

राक्षसी—रुधिरप्रिय ! ईदृशे हतनरगजतुरगमशोणितवसासमुद्रदुःसंचरे  
समराङ्गणे परिभ्रमन् त्वं पिपासितोऽसीदित्याश्चर्यमाश्चयेम् ।

## १७. शोणित पिपासा'

राक्षसी—( विवृत विहस्य, सपरितोषम् )

हृदमाणुशमशमोअणे कुम्भशहृशवशाहि शचिदे ।

अणिश अ'पिवा(वा)मि शोणिअ वलिशशद शमले हुविशदि ॥

( नृयती सपरितोषम् ) अइ शिन्बुलाअअहदिअहे विअ शमलकम्म

पडिव(व)अइ अज्जुणो(णे) तदो अ पज्जन्तमलिदगोद्वागाले

मशशोणिणहिं मे गेहे हुवीअदि । ( परिक्रम्य शिशोऽन्तोत्थ )

अह कहिं णु लुहिलप्पिए हुवीअदि । ता चाव इमशिश

शमले पिअमत्तल लुहिलप्पिअ अण्णेशामि । ( परिक्रम्य )

होदु शदान(व,इदश दाव । लुहिलप्पिआ लुहिलप्पिआ इदो

एहि इदो एहि ।

( तत प्रविशति तथाविधो राक्षस )

राक्षस —(धम नाट्यम् )

पच्चग्गद्दाण मशए अइ उण्हे लुहिले अ लम्मइ ।

ता एशे मह पलिदशमे खणमेत्तं एव लहु णदशइ ॥

( राक्षसो पुनर्गहरति )

राक्षस —( आकर्ष्य ) अले के एशे म शहावे(वे)दि । ( विलोम्य ) अले

कहं वशागन्धा । ( उपसृत्य ) वशागन्धे मंकोश शहावे(वे)सि ।

राक्षसी—लुहिलप्पिआ एद कत्तु तुह कालणादो पच्चग्गहदश कदश वि

(वि) लाएशिणो शलीलावअवप्पहृद प्हदवशाशिणेद्विकरण

कोण्ह लुहिल अम्ममंशं च आणीद ता पिवा(वा)हि ण ।

राक्षस —( सपरितोषम् ) शाहु वशागन्धे शाहु, शोहणं किद तुए

वलिअमिदि पिवा(वा)शिदे एद कोशिण लुहिलं आणीद ।

राक्षसी—लुहिलप्पिआ ईदिशे हृदणलगअतुल्लगमशोणिअवशाशानुद्दुरशचले

शामल्लङ्गणे पडिअमन्ते तुम पिवा(वा)शिअशि चि अच्चलिअं

अच्चन्धि ।

१. मन्टनारान्त ( वरीं घटान्ते ) निरचित-बणोन्हार ( Julius Grill द्वारा सम्पादित एवं Leipzig में १८७१ में प्रकाशित ) के द्वितीय पृष्ठ ( पृष्ठ ३३-३४ ) से उद्धृत ।

( संस्कृतच्छाया )

राक्षसः—(सक्रोधम्) अरे वसागन्धे ! पुत्रघटोत्कचशोकसंतप्तहृदयां स्वामिनीं हिडिम्बादेवीं प्रेक्षितुं गतोऽस्मि ।

राक्षसी—रुधिरप्रिय ! अद्यापि स्वामिन्या हिडिम्बादेव्या घटोत्कच-शोको नोपशाम्यति ।

राक्षसः—अयि ! कुतोऽस्या उपशम, किन्त्वभिमन्युवधशोकसमान-दुःखया सुभद्रादेव्या धातसेन्या च समाश्वास्यते ।

राक्षसी—रुधिरप्रिय ! गृहाण त्वमेतद्वस्तिशिरःरूपालसंचितमग्रमां-सोपदंशं च पित्र नवशोणितासवम् ।

राक्षसः—(तथाकृत्वा) वसागन्धे ! अथ कियत्प्रभूतं त्वया संचितं रुधिर-मग्रमांसं च ?

राक्षसी—अरे रुधिरप्रिय ! पूर्वसंचितं त्वमेव जानासि, नवसंचितं शृणु । भगदत्तशोणितकुम्भः सिन्धुराजवसाकुम्भी द्वौ मत्स्याधिपभूरिश्रव सोमदत्तबाल्हीकप्रमुखाणां नरेन्द्राणां प्राकृतपुरुषाणां च रुधिरवसामांसस्य घटा अपिनद्धमुखा सहस्रसंख्याः सन्ति मे गृहे ।

राक्षस —(सपरितोषमालिङ्ग्य) साधु साधु सुगृहिण्याः साधु साधु । अनेन ते सुगृहिणीत्वेन स्वामिन्या हिडिम्बादेव्याः संविभागेन च प्रनष्टं मे दारिद्र्यम् ।

राक्षसी—रुधिरप्रिय ! कीदृश स्वामिन्या संविभागः कृतः ?

राक्षसः—अद्याह स्वामिन्या हिडिम्बादेव्या सवहुमानं शब्दापयित्वा-ज्ञप्तो यथा रुधिरप्रिय अद्यप्रभृत्यार्यपुत्रभीमसेनस्य पृष्ठतोऽनुपृष्ठं समर आहिण्डितव्यमिति । तत्तस्यानुमार्गगामिनीं हतमानुपशोणितनदीदर्शनप्रनष्टबुद्धापिपासयेहैव संगमस्तु-मुलको मे भूयते (भवति) । त्वमपि विश्रब्धा भूत्वा रुधिर-वसाभिः कुम्भसहस्रं संचय ।

१८. योग्यं योग्येन<sup>१</sup>

राक्षसः—( सक्कोधम् ) अले वशागन्धे । पुत्तघडुक्कअशोअशंतत्तहिअअं  
शामिणिं हिडिम्बादेइं पेक्खिदुं गदग्धि ।

राक्षसी—लुहिलप्पिआ । अज्ज वि(वि) शामिणीए हिडिम्बादेईए घडुक्क-  
अशोए ण उव(व)शम्मदि ।

राक्षसः—अइ कुदो शे उव(व)शमे किं तु अहिमण्णुवहशोअशमाणदुक्खाए  
शुभदादेवीए जण्णशेणीए अ शमाशाशीअदि ।

राक्षसी—लुहिलप्पिआ गेण्ह तुमं एदं हत्थिशिलक्खा(वा)लशंचिअं  
अगमंशोव(व)दंश अ पिअ(व)हि णवशोणिआशवं ।

राक्षसः—( तथा कृत्वा ) वशागन्धे अह किअप्पहृदं तुए शंचिअं लुहिलं  
अगमंशं च ?

राक्षसी—अले लुहिलप्पिआ । पुअशंचिअं तुमं जेअव जाणाणि, णवशंचिअं  
शिणु । भअदत्तशोणिअकुम्भे शिअवुलाअदशाकुम्भे दुवे  
मच्छाहिअ(व)भूलिअशवशोमदत्तअल्हीअप्पमुत्ताणं णलिअन्दाणं पाकि-  
अपुलिशाणं च लुहिलअशमंशरश घटा अवि(वि)अद्वमुहा शह-  
अशरंक्खा अन्ति मे गेहे ।

राक्षसः—( उपरितोपमासिद्धम् ) शाहु शाहु शुअलिणीए शाहु शाहु ।  
इमिणा दे शुअलिणित्तणेण शामिणीए हिडिम्बादेरीए शंविहाएण  
अ पणट्टं मे दालिदं ।

राक्षसी.—लुहिलप्पिआ केलिसे शामिणीए अविहाए किदे ?

राक्षसः—अज्ज अहं शामिणीए हिडिम्बादेईए शवहुमाणं शदावि(वि)अ  
आणत्ते चह लुहिलप्पिआ अज्ज पणुदि अज्जत्तभीअशेणरश  
पिट्ठोणुपिट्ठं शमत्ते आट्ठिअद्वं चि(नि) । ता तश अणुअगगा-  
मिणे हदमाणुशोणिअअईदंशणप्पगट्ठुअुम्भादिआ(वा)शरश इह  
एअ शंगमो तुअुअो मे तुवीअदि तुमं वि(वि) अिअदा भविअ  
लुहिलअरादि अुम्भअददरा अचिदि ।

1. अट्टासायण विरचित्त वेणीमंहार (गन्गावर—Julius Grill) के द्वितीय  
अंक ( पृष्ठ १४-१६ ) से उद्धृत ।

## अर्धमागधी प्राकृत

## प्रमुख विशेषताएं

## व्यञ्जनपरिवर्तन

सुप्तव्यञ्जन > यश्रुति, श्रेणि रुम् = सेणियं, च = य, कामध्वजा = कामङ्क्या,  
एतत् = एयं आदि ।

क > ग, श्राव रु' = सावगे, दारकस्य = दारगस्त ।

न > ण, न; गमनाय = गमणाए, नाम = नामं ।

प > व, उपमा = उवमा, तपति = तवइ ।

## शब्दरूप

सु ( विभक्ति प्रत्यय ) = ए, क्वचित् ओ, श्रेणिक' = सेणिए, भगवन् =  
भगवन्तो भगवं ।

हे ( " " ) आए, आते, जिनाय = जिणाए, जिणाते ।

डि ( " " ) मूसि, धरणीतले = धरणीयलंसि, परिणम्यमाने =  
परिणयमाणंसि ।

तत् + भ्यस् = तेवभो आदि ।

युष्मद् + ङस् = तव आदि, अस्मत् + आम् = अस्माकं आदि ।

## धातुरूप—

भूतकाल बहुवचन में इसु प्रत्यय, पुच्छिसु गच्छिसु ।

कुछ विशिष्ट रूप— आचक्षति = आश्करइ, अब्रवीत् = अब्रवी, आसीत् =  
होत्था आदि ।

१—संयुक्त व्यञ्जन में यदि एक व्यञ्जन ण हो तो उसे ण्य हो जाता है । अन्य  
स्वलों पर न्न होता है । यथा—जीर्णं = जूर्णं दत्त = दित्त ।

A Manual of Ardha-Magadhi Grammar.

( द्रष्टव्य—पाइअ सद्-महण्णवो की भूमिका श्ल ३६ से ४३ तक )

तथा A Manual of Ardha-Magadhi  
Grammar by P.L. Vaidya )



## आगम तथा आदेश

म् आगम, एवैकम् = एगमेगं, निरयगामी = निरयंगामी ।

अम् > आम् ( एव से पूर्व ), तमेव = तामेव, एरमेव = एवामेव ।

इति वा > ति वा, इ वा ( दीर्घ स्वर से परे ) इन्द्रमह इति वा = इंदमहे  
ति वा, इदमहे इ वा ।

यथा > अहा, जहा ; यथाजातं = अहाजातं, यथानामकः = जहाणामए ।

यावत् > आव, जाव ; यावत्कथा = आरुहा, यावज्जीवं = जावज्जीवं ।

तर > तराय, अल्पतरः = अप्पतराए, बहुतर = बहुतराए ।

## कृदन्त

क्त्वा > ट्टु, च्चा, इत्ता, इत्ताणं, तुआणं, आय, आए ।

कृत्वा = कट्टु, क्त्रिआ, करित्ता, करित्ताण, काठआणं ।

गत्वा = गघ्वा, गच्छित्ताणं ।

गृहीत्वा = गहाय ; आदाय = आयाए ; संप्रेक्ष्य = संपेहाए ।

तुम् > तए,

कर्तुं = करित्ताए, द्रष्टुम् = पासित्ताए ।

( शेष प्राकृत के सामान्य नियमों के अनुसार )

## ( संस्कृतच्छाया )

ततः खलु स कूणिको राजा चेल्लनाया देव्या अन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य चेल्लनां देवीमेवमवादीत्—“दुष्टु खलु अम्ब ! मया कृतं श्रेणिकं राजानं प्रियं दैवतं गुरुजनकमत्यन्तस्नेहानुरागरक्तं निगडवन्धनं कुर्वता । तद् गच्छामि खलु श्रेणिकस्य राज्ञः स्वयमेव निगडानि छिनद्मि”, इति कृत्वा परशुहस्तगतो यत्रैव चारकशाला तत्रैव प्रधारयति गमनाय । ततः खलु श्रेणिको राजा कूणिकं कुमारं परशुहस्तगतमेजमानं पश्यति, दृष्ट्वा एवमवादीत्— “एष खलु कूणिकः कुमारः अप्रार्थित-प्रार्थितो यावत् श्रीहीपरिवर्जितः परशुहस्तगत इह हव्यामगच्छति । तन्न ज्ञायते खलु मां केनापि कुमारेण ( कुत्सितमारेण ) मारयिष्यती” ति कृत्वा भीतो यावत् संजातभयस्तालपुटकं विपमास्ये प्रक्षिपति । ततः खलु स श्रेणिको राजा तालपुटकविपे आस्ये प्रक्षिप्ते सति मुहूर्तान्तरेण परिणम्यमाने निष्प्राणो निश्चेष्टो जीवविप्रत्यक्तोऽवतीर्णः ।

ततः खलु स कूणिकः कुमारो यत्रैव चारकशाला तत्रैवोपागतः, उपगत्य श्रेणिकं राजानं जीवविप्रत्यक्तमवतीर्णं पश्यति, दृष्ट्वा महता पितृशोकेन आक्रान्त सन् परशुनिवृत्त इव चम्पकवरपादप “धस” इति धरणी-तले सर्याङ्गैः सनिपतित । ततः खलु स कूणिकः कुमारो मुहूर्तान्तरेण आस्त्रस्थः सन् रुदन् क्रन्दन् शोचन् विलपन् एवमवादीत्—“अहो ! खलु मया अधन्येनापुण्येनाकृतपुण्येन दुष्टु कृतं श्रेणिकं राजानं प्रियं दैवतमत्यन्तस्नेहानुरागरक्तं निगडवन्धनं कुर्वता, मम मूलकं चैव खलु श्रेणिको राजा कालगत” इति ।

१९. श्रेणीकराजस्य प्राणत्यागः<sup>१</sup>

तए णं से कूणिए राया चेल्लणाए देवीए अन्तिए एयमट्ट सोच्चा निसम्म चेल्लणं देविं एवं वयासी—“दुट्टु णं, अम्मो, मए कयं सेणियं रायं पियं देवयं गुरुजणगं अच्चन्तनेहाणुरागरत्तं नियलवन्धणं करन्तेणं । तं गच्छामि णं सेणियस्स रत्तो सयमेव नियलाणि छिन्दामि” त्ति कट्टु परमुहत्थगए जेणेव चारगसाला तेणेव पहारेत्थ गमणाए । तए णं सेणिए राया कूणियं कुमारं परमुहत्थगयं एज्जमाणं पासइ, पासिचा एवं वयासी—“एस णं कूणिए कुमारे अपत्थियपत्थिए जाव सिरिहिरिपरिवज्जिए परमुहत्थगए इह हव्वमागच्छइ । तं न नज्जइ णं ममं केणइ कुमारेणं मारिस्सइ” त्ति कट्टु भीए जाव संजायमए तालपुढगं विसं आसगंसि पक्खिवइ । तए णं से सेणिए राया तालपुढगविसंसि आसगंसि पक्खित्ते समाणे गहुत्तन्तरेण परिणममाणंसि निप्पाणे निच्चेट्टे जीवविप्पज्जडे ओइण्णे ।

तए णं से कूणिए कुमारे जेणेव चारगसाला तेणेव उवागए उवागाच्छत्ता सेणियं रायं निप्पाणं निच्चेट्टं जीवविप्पज्जटं ओइण्णं पासइ, पासिचा गहया पिइसोएणं अप्फुण्णे समाणे परमुनियत्ते विव चम्पगवरपायत्ते धम त्ति धरणीयत्तंसि सच्चत्तेहिं संनिवडिए । तए णं से कूणिए कुमारे गहुत्तन्तरेण आसत्थे समाणे रोयमाणे कन्दमाणे सोयमाणे विलयमाणे एवं वयासी—“अहो णं मए अधन्नेणं अपुण्णेणं अकयपुण्णेणं दुट्टु कयं सेणियं रायं पियं देवयं अच्चन्तनेहाणुरागरत्तं नियलवन्धणं करन्तेणं । मममूलागं चेव णं सेणिए राया फालगए” त्ति ।

१. त्रिवारविद्यापी ( सम्पादक एवं प्रकाशक डाक्टर पी० एस० देव, पूना १९१२ ) के प्रथम वर्ग ( पृ० १७-१८ ) में उद्धृत ।

## ( संस्कृतच्छाया )

तत खलु स चेटको राजा अस्याः कथाया लब्धार्थः सन् नवमहकि-  
नवलेच्छविकाशीकौशलकात्रष्टादशापि गणराजान् शब्दयति, शब्दयित्वा  
एवमवादीत्—एवं खलु देवानुप्रियाः ! वैहल्लयः कुमारः कूणिकस्य  
राज्ञोऽसविदितेन सेचनकं गन्धहस्तिनमष्टादशवक्रं च हारं गृहीत्वा इह  
हव्यमागतः । ततः खलु कूणिकेन सेचनकस्याष्टादशवक्रस्य चार्थाय  
त्रयो दूताः प्रेषिता । ते च मयाऽनेन कारणेन प्रतिपिद्धाः । ततः खलु  
स कूणिको मम एतमर्थमप्रतिशृण्वन् चातुरङ्गिण्या सेनया सार्द्धं संपरिवृतो  
युद्धसञ्ज इह हव्यमागच्छति । तत् किं नु देवानुप्रियाः ! सेचनकम-  
ष्टादशवक्रं च कूणिकाय राज्ञे प्रत्यर्पयामः ? वैहल्लयं कुमारं प्रेषयामः ?  
एताहो युध्यामहे ? तत खलु नवमहकिनवलेच्छविकाशीकौशलका  
त्रष्टादशापि गणराजाश्चेतकं राजानमेवमवादिपुः—‘नैतत् स्वामिन् !  
युक्तं वा प्राप्तं वा राजसदृशं वा यत्खलु सेचनकमष्टादशवक्रं कूणिकाय  
राज्ञे प्रत्यर्प्यते, वैहल्लयश्च कुमार शरणागतः प्रेष्यते । तत् यदि खलु  
कूणिको राजा चातुरङ्गिण्या सेनया सार्द्धं संपरिवृतो युद्धसञ्ज इह  
हव्यमागच्छति तदा खलु वयं कूणिकेन राज्ञा सार्द्धं युध्यामहे ।’

ततः खलु स चेटको राजा तान् नवमहकि नवलेच्छवि काशी-कौश-  
लकात्रष्टादशापि गणराजान् एवमवादीत् - यदि खलु देवानुप्रियाः ! यूयं  
कूणिकेन राज्ञा सार्द्धं युध्यध्वं, तद्गच्छत खलु देवानुप्रियाः स्वकेषु  
स्वकेषु राज्येषु, स्नाता यथा कालादिका यावज्जयेन विजयेन वर्द्धयन्ति ।  
ततः खलु स चेटको राजा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा  
एवमवादीत् आभिषेक्यं यथा कूणिको यावद् दुरुह ।

## २०. कृणिकचेटकयोर्युद्धोद्योगः<sup>१</sup>

तए णं से चेडए राया इमीसे कडाए लद्धट्टे समाणे नव मल्लई नव लेच्छई कासीकोसलगा अट्टारस वि गणरायाणो सदावेद, सदाविजा एवं वयासी—एवं खलु, देवाणुप्पिया, वेहल्ले कुमारे कृणियस्स रन्नो असंविदिएणं सेयणगं अट्टारसवंकं च हारं गहाय इहं हव्वमागए । तए णं कृणिएणं सेयणगस्स अट्टारसवंकस्स य अट्टाए तओ दूया पेसिया । ते यं मए इमेणं कारणेणं पडिसेहिया । तए णं से कृणिए ममं एयमट्टं अपडिमुणमाणे चाउरङ्गिणीए सेणाए सद्धि संपरिवुडे जुद्धसज्जे इहं हव्वमागच्छइ । तं किं णं, देवाणुप्पिया, सेयणगं अट्टारसवंकं कृणियस्स रन्नो पच्चप्पिणामो ? वेदल्लं कुमारं पेसेमो ? उदाहु जुज्झिन्था ? तए णं नव मल्लई नव लेच्छई कासीकोसलगा अट्टारस वि गणरायाणो चेडगं रायं एवं वयासी—“न एयं, सामी, जुत्तं वा पत्तं वा रायसरिसं वा, जं णं सेयणगं अट्टारसवंकं कृणियस्स रन्नो पच्चप्पिणिज्जइ, वेदल्ले य कुमारे सरणागए पेमिज्जइ । तं जइ णं कृणिए राया चाउरङ्गिणीए सेणाए सद्धि संपरिवुडे जुद्धसज्जे इत्तं हव्वमागच्छइ, तए णं अट्टे कृणिएणं रन्ना सद्धि जुज्झामो” ।

तए णं से चेडए राया ते नव मल्लई नव लेच्छई कासीकोसलगा अट्टारस वि गणरायाणो एवं वयामी—“जइ णं, देवाणुप्पिया, तुव्वमे कृणिएणं रन्ना सद्धि जुज्झइ, तं गच्छइ णं, देवाणुप्पिया, सरसु सपमु रज्जेमु ष्हाया, जहा फालाईया,” वाव जएणं विजएणं वदावेन्ति । तए णं मे चेडए राया कोटुम्बियपुरिसे सदावेद, सदाविजा एवं वयामी—“वाभिमेवरं, जइ कृणिए” वाव दुख्खे ।

१. निरयावपिदाओ ( सम्पादक एव प्रकाशन पी० एन० पेंड, पूना १९१२ )  
के प्रथम सर्ग ( पृष्ठ २६-२७ ) से उद्धृत ।

( संस्कृत-छाया )

तेन कालेन तेन समयेन (तस्मिन् काले तस्मिन् समये) वाणिजप्रामो नाम नगरमासीत् ऋद्धस्तिमितसमृद्धम् । तस्य खलु वाणिजप्रामस्योत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे दूतीपलाश नामोद्यानमासीत् । तत्र खलु दूतीपलाशे सुधर्मणो यज्ञस्य यज्ञायतनमासीत् । तत्र खलु वाणिजप्रामे मित्रो नाम राजा आसीत् । तस्य खलु मित्रस्य राज्ञ श्रीर्नाम राज्ञी आसीत् ।

तत्र खलु वाणिजप्रामे कामध्वजा नाम गणिका आसीत् अहीनयावत् सुरूपा द्वासप्ततिकलापण्डिता चतुःषष्टिगणिकागुणोपपेता एकोनत्रिंशति विशेषेषु रममाणा एकविंशतिरतिगुणप्रधाना द्वात्रिंशत् पुरुषोपचारकुशला नवाङ्गसुप्तप्रतिबोधिता अष्टादशदेशीयभाषाविशारदा शृङ्गारागारचारुवेपा गीतरतिगन्धर्वनाट्यकुशला संगत-गत-हसित-भणित-विहित-विलास-ललित सलाप-निपुण-युक्तोपचारकुशला, सुन्दर-स्तन-जघन-वदन-कर-चरण-लावण्यविलासकलिता उच्छ्रितध्वजा सहस्रलाभा वित्तीर्णद्वत्रचामरवालव्यजनिका कर्णारथप्रयाता चापि आसीत् चहूनां गणिकासहस्राणामाधिपत्यं पौरोवृत्यं स्वामित्वं भर्तृत्वं महत्तरकत्वमाद्येश्वरसेनापत्यं कारयन्ती (परै) पालयन्ती विहरति ।

२१. कामध्वजा गणिका'

तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियगामे नामं नयरे' होत्था रिद्ध-  
त्थिमियसमिद्धे । तस्स णं वाणियगामस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए  
दूर्इपलासे नामं उज्जाणे होत्था । तत्थ णं दूर्इपलासे सुहम्मस्स जस्सस्स  
जवस्साययणे होत्था । तत्थ णं वाणियगामे मिचे नामं राया होत्था ।  
तस्स णं मित्तस्स रत्तो सिरी नामं देवी होत्था ।

तत्थ णं वाणियगामे कामज्झया नामं गणिया होत्था अहोण-त्ताव  
सुरूवा वावत्तरिकलापण्डिया चउसट्टिगणियागुणोवयेया एग्गूणतीसन्निसेसे  
रममाणी एक्कवीसरइगुणप्पहाणा वत्तीसपुरिसोवयारकुसला नवद्दसुत्तपडिभो-  
हिया अट्टारसदेसीभासाविसारया सिंगारागारचारुनेसा गीयरइग्गन्धन्नट्ट-  
कुसला संगय-गय-हसिय-भणिय-विहिय-विलास-ललिय-संलाव-निउण-जुत्तो-  
वयारकुसला, सुन्दर-थग-जहण-चयण-करचरण-लावण्णविलास-कलिया  
कसियज्झया सहस्सलम्भा विदिण्णउत्तचामरवालवीयणीया कण्णीरहप्पयाया  
यावि होत्था बहूण गणियासहस्साणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं  
महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणी पालेमाणी विहरइ ।

१. विरामगुप्त ( शाश्वर वी० एन० वेद्य पुता द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित  
१९३५ ) इत् १९-२७ से उद्धृत ।

## ( संस्कृतच्छाया )

तेन कालेन तेन समयेन ( तस्मिन् काले तस्मिन् समये ) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य ज्येष्ठोऽन्तेवासी इन्द्रभूतिर्यावत् तेजोलेश्यः पष्ट पष्टेन यथा प्रज्ञप्तौ प्रथमायां यावत् यत्रैव वाणिजगामः तत्रैवोपागच्छति उपगत्य वाणिजगामे उच्चनीचमध्यमानि कुलानि अटन् यत्रैव राजमार्गः तत्रैवोपागच्छति, उपगत्य तत्र खलु बहून् हस्तिन पश्यति सनद्धबद्धवर्मितगुडितान् उत्पीडितवरत्रान्, उद्दामितघण्टान्, नानामगिरत्नविविधप्रैवेयकान्, उत्तरकञ्चुकितान्, परिकल्पितध्वजपताकावरपञ्चापीडान् आरूढहस्त्यारोहान् गृहीतायुधप्रहरणान् । अन्यांश्च तत्र बहून् अश्वान् पश्यति, संनद्धबद्धवर्मितगुडितान्, आविद्धगुडान्, अवसारितपक्करान् उत्तरकञ्चुकितान् अवचूलकमुखचण्डाधरचामरस्थासकपरिमण्डितकटीन् आरूढाश्वारोहान्, गृहीतायुधप्रहरणान्, तेषां च खलु पुरुषाणा मध्यगतं एकं पुरुषं पश्यति, अवक्रोटकधन्धनम्, उत्कृत्तकर्णनासम्, स्नेहतपितगात्रम् बद्धकरकडियुगन्यस्तम्, कण्ठे गुणरक्तमाल्यदामान् चूर्णगुडितगात्रम्, चूर्णकम्, वध्यप्राणप्रियं तिलं तिल चैव छेद्यमानं कागणिमांसस्ताद्यम्, पापं स्पर्शरशतैर्हन्यमानं, अनेकनरनारिसंपरिवृतं चत्वरे चत्वरे सण्डपटहेन उद्घोष्यमाणम्, इमां च खलु एतद्रूपाम् उद्घोषणां शृणोति—नो खलु हे देवानुप्रिया ! उज्जितकस्य दारस्य कोऽपि राजा वा राजपुत्रो वा अपराध्यति, आत्मनस्तस्य स्त्रकानि कर्माणि अपराध्यन्ति ।



२२. कर्म-विपाकः<sup>१</sup>

तेणं कालेणं तेणं समणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेठ्ठे  
 अन्तेवासी इन्दभूर्दे नामं अणगारे जाव लेस्से छट्ठंछट्ठेणं, जहा पन्नत्तीप,  
 पढम जाव जेणेव वाणियगामे नयरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता  
 उच्चनीयमज्झिमकुलाइं अडमाणे जेणेव रायमग्गे तेणेव ओगाडे । तत्थ  
 णं वहवे हत्थी पासइ संनद्धवद्धवग्मियगुडियउप्पीलियरुच्छे उद्दामियघण्टे  
 नाणामणिरयणविविहगेवेज्जउत्तरकच्चुइज्जे पडिकप्पिए श्यपडागवरप  
 च्चामेलआरूढहत्थारोहे गहियाउहप्पहरणे । अन्ने य तत्थ वहवे आसे  
 पासइ संनद्धवद्धवग्मियगुडिए आविद्धगुडे ओसारियक्खरे उत्तरक-  
 च्चुइयओचूलमुहचण्डाधरचामरथासगपरिमण्डियरुडिए आरूढआसारोहे  
 गहियाउहप्पहरणे । अन्ने य तत्थ वहवे पुरिसे पासइ संनद्धवद्धवग्मियक्खए  
 उप्पीलियसरासणपट्टिए पिणद्धगेवेज्जे विमलररवद्धचिन्धपट्टे गहियाउहप्प-  
 हरणे । तेसिं च णं पुरिसाणं मज्झगयं पुरिसं पासइ अवओटयवन्धणं  
 उम्भित्तकण्णनासं नेहतुप्पियगतं वज्झकम्मखडियजुयनियत्थं कण्ठे गुण-  
 रत्तमहद्दामं चुण्णगुण्डियगतं चुण्णयं वज्झपाणपियं तिलं तिलं चैव  
 छिज्जमाणं कागणिमंसाइं स्वावियन्तं पावं खक्खरगसपहिं हम्ममाणं  
 अणेगनरनारीसंपरिवुहं चच्चरे चच्चरे खण्डपडहणं उग्घोसिज्जमाणं ।  
 इमं च णं एमारूवं उग्घोसणं पडिसुणेइ—नो खलु, देवाणुप्पिया,  
 उज्जायगस्स दारगस्स केइ राया वा रायपुत्तो वा अररज्जइ, अप्पणो से  
 सयाइं कम्माइं अररज्जन्ति ।

१. निगमगुण ( दासरा गो० एण० पैल द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित, १९३३ )  
 पृष्ठ १४-१८ से उद्धृत ।

## जैन-शौरसेनी प्राकृत<sup>१</sup>

### विशेषताएँ प्रमुख

१. अनादि असंयुक्त क, ग, आदि व्यञ्जनों का प्रायः लोप हो जाता है। तत्पश्चात् यदि अ या आ अवशिष्ट रहे तो लुप्त व्यञ्जन के स्थान पर यश्रुति होती है।

सामायिकम् = सामर्थ्यं, वचनैः = वयणेहिं, योगिनी = जोइणी, गजाः = गया आदि।

२. यदि लुप्त वर्ण के पूर्व उच्चार हो तो प्रायः वश्रुति हो जाती है।

मनुज = मणुवो, उदरम् = उवरं।

३. कुछ स्थलों पर क को ग एवं त को द हो जाता है।

अवकाशम् = अवगासं, एकम् = एगं, गतीनाम् = गदीणं, भणितः =

भणितो।

१. (अ) दिगम्बर जैनो के आगम ग्रन्थों की भाषा को जैन शौरसेनी संज्ञा दी गई। वास्तव में यह भाषा शौरसेनी प्राकृत का ही प्रारम्भिक रूप है। नाटको में पाई जाने वाली शौरसेनी इसी का परिष्कृत रूप है। इसमें हमें अर्धमागधी प्राकृत से साम्यता रखने वाले कुछ वर्णविकार मिलते हैं, जिससे कि वर्तमान शौरसेनी से यह कुछ भिन्न प्रतीत होती है। अत एव इसे जैन-शौरसेनी नामक संज्ञा दे दी गई। इतना अवश्य है कि जिन्होंने केवल संस्कृत नाटको में स्थित शौरसेनी प्राकृत के अक्षो का सामान्य अध्ययन किया हो उन्हें जैन-शौरसेनी प्राकृत कुछ अपरिचित सी प्रतीत होगी। जैन शौरसेनी प्राकृत के ज्ञान के लिए वहीं कहीं अर्धमागधी के ज्ञान की भी आवश्यकता होती है। अतः उसकी कुछ विशेषताओं का उल्लेख उसे पृथक् भाषा मानकर किया गया है। इसके प्रमुख ग्रन्थ प्रवचनसार समयसार, कातिकेयानुप्रेक्षा आदि हैं।

(ब) इस भाषा के विस्तृत ज्ञान के लिए देखिए डा० ए० एन० उपाध्ये द्वारा सम्पादित प्रवचनसार एवं कातिकेयानुप्रेक्षा ग्रन्थों की भूमिकाएँ।

४. अनुनासिक व्यञ्जनों में केवल ण एवं म का ही अस्तित्व पाया जाता है। स्वर्ग के पूर्व आने वाले ङ्, ञ्, ण्, न्, म्, को नियम से अनुस्वार हो जाता है। न्न को ण्ण होता है।<sup>१</sup>

नियमेन - नियमेण, भुजङ्ग = भुयंगो, क्रिञ्चित् = क्रिचि, रण्डेपु = रण्डेसु, वन्दितः = वंदिओ, संप्राप्तिः = संपत्ती, भिन्नं = भिण्णं।

५. कुछ स्थलों पर व्यञ्जनों में द्वित्वीकरण की प्रवृत्ति देखी जाती है। त्रिलोकशिरामणिः = तिल्लोयसिहामणी, शीचम् = सवच्चं।

६. कहीं कहीं विभक्ति-प्रत्यय से शून्य पद दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे—अध्रुमशरणं भणिताः = अद्भुव असरण भणिया।

७. सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ङि को ङ्हि भी होता है।  
स्वरूपे = सस्वरुण्हि, लोके = लोयण्हि।

८. क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर त्ता, च्चा भी होते हैं।  
हात्त्वा = जाणित्ता, कृत्त्वा = किच्चा आदि।

१. आर० विश्व ने अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री एवं जैन-शीरसेनी में शब्द के प्रारम्भिक न एवं मध्यगत प्र को आरिर्वाज्ज बताना है (देसिण्णि० प्रा० पाठ० नं० २१६) सिन्धु जैनशीरसेनी में दोनों (न, प्र) ही नहीं पाये जाते हैं।

( संस्कृतच्छाया )

- गाथा ३ परभवनयानवाहनशयनासनानि देवमनुजराज्ञाम् ।  
मातृपितृस्वजनभृत्यसम्बन्धिनश्च पितृव्योऽनित्याः ॥१॥
- गाथा ४ समग्रेन्द्रियरूपमारोग्यं यौवनं बलं तेजः ।  
सौभाग्यं लावण्यं सुरधनुरिव शाश्वतं न भवेत् ॥२॥
- गाथा ६ जीवनिबद्धं देहं (देहं) क्षीरोदकमिव विनश्यति शीघ्रम् ।  
भोगोपभोगमारणद्रव्यं नित्यं कथं भवति ॥३॥
- गाथा ८ मणिमन्त्रौषधरक्षा ह्यगजरथाश्च सकलविद्या ।  
जीवानां न हि शरणं त्रिषु लोकेषु मरणसमये ॥४॥
- गाथा ९ स्वर्गो भवेत् हि दुर्गं भृत्या देवाश्च प्रहरणं वज्रम् ।  
एरावणो गजेन्द्र इन्द्रस्य न विद्यते शरणम् ॥५॥
- गाथा १० नयनिधिः चतुर्दशरत्नं ह्यमत्तगजेन्द्रचतुरङ्गबलम् ।  
चक्रेशस्य न शरणं पश्यत कर्दिते कालेन ॥६॥
- गाथा १४ एकः करोति कर्म एकः द्विण्डति च दीर्घसंसारे ।  
एकः जायते म्रियते च तस्य फलं भुङ्क्ते एकः ॥७॥
- गाथा १५ एकः करोति पापं विषयनिमित्तेन तीव्रलोभेन ।  
नरकतिर्यक्षु जीवो तस्य फलं भुङ्क्ते एकः ॥८॥
- गाथा १६ एकः करोति पुण्यं धर्मनिमित्तेन पात्रदानेन ।  
मानप्रदेवेषु जीवो तस्य फलं भुङ्क्ते एकः ॥९॥
- गाथा २१ मातृपितृसहोदरपुत्रकुलत्रादिवन्धुसन्धोहः ।  
जीवस्य न सम्बन्धो निजमार्थवशेन वर्तन्ते ॥१०॥
- गाथा २२ अन्योऽन्यं शोचति मदीयोस्ति गमनाथक इति मन्यमानः ।  
आत्मानं न हि शोचति संसारमहार्णवे पतितम् ॥११॥

२३. द्वादश-अनुप्रेक्षा<sup>१</sup>

- गाथा ३ वरभरणजाणवाहणसयणासण देवमणुवरायाणं ।  
मादुपिदुसज्जणभिच्चसंप्रधिणो य पिद्रिवियाणिच्चा ॥ १ ॥
- गाथा ४ सामग्गिंदियरूयं आरोग्गं जोवण वलं तेजं ।  
सोहग्गं लावणं सुरधणुमिव सस्सयं ण हवे ॥ २ ॥
- गाथा ६ जीवणिवद्धं देहं खीरोदयमिव विणस्सदे सिग्घं ।  
भोगोपभोगकारणदब्बं णिच्चं कहं होदि ॥ ३ ॥
- गाथा ८ मणिमंतोसहरक्खा ह्यगयरहओ य सयलविज्जाओ ।  
जीवाणं ण हि सरणं तिसु लोए मरणसमयग्घि ॥ ४ ॥
- गाथा ९ समो हवे हि दुग्गं भिच्चा देवा य पहरणं वज्जं ।  
अहरावणो गइंदो इंदस्स ण विज्जदे सरणं ॥ ५ ॥
- गाथा १० णवणिहि चउदहरयणं ह्यमत्तगइंद चाउरंगवलं ।  
चक्केसस्स ण सरणं पंच्छतो कद्विये काले ॥ ६ ॥
- गाथा १४ एक्को करेदि कम्मं एक्को हिंढदि य दीहसंसारे ।  
एक्को जायदि मरदि य तस्स फलं भुंजदे एक्को ॥ ७ ॥
- गाथा १५ एक्को करेदि पावं विसयणिमित्तेण तिव्वलोहेण ।  
णिरयतिरियेसु जीवो तस्स फलं भुंजदे एक्को ॥ ८ ॥
- गाथा १६ एक्को करेदि पुण्णं धम्मणिमित्तेण पत्तदाणेण ।  
मणुवदेवेषु जीवो तस्स फलं भुंजदे एक्को ॥ ९ ॥
- गाथा २१ मादापिदरसहोदरपुत्तकल्लादिबंधुसंदोहो ।  
जीवस्स ण संबधो णियकज्जससेण वट्टन्ति ॥ १० ॥
- गाथा २२ अण्णो अण्णं सोयदि मदो त्ति मम णाहगो त्ति मण्णतो ।  
अण्णार्णं ण हु सोयदि संमारमहण्णये बुद्धं ॥ ११ ॥

१. भाषार्थ बुन्दबुन्द ( प्रथम शताब्दी ) विरचित-भट्टप्रामृताशिरः ( पं० पद्मलाल सेनी द्वारा सम्पादिता तथा श्री मालिनाम्ब दिगम्बर जैन धर्ममाला समिति द्वारा वि० सं० १९७७ में प्रकाशित ) के अन्तर्गत बारह अनुप्रेक्षा के द्वादश ।

- गाथा ३० पुत्ररुलत्रनिमित्तं अर्थमर्जयति पापबुद्ध्या ।  
परिहरति दयादानं सः जीवः भ्रमति संसारे ॥ १ ॥
- गाथा ३१ मम पुत्रो मम भार्या मम धनधान्यमिति तीव्रकांक्षया ।  
त्यक्त्वा धर्मबुद्धिं पश्चात् परिपतति दीर्घसंसारे ॥ २ ॥
- गाथा ३६ संयोगविप्रयोगं लाभालाभं सुखं च दुःखं च ।  
संसारे भूतानां भवति हि मानं तथापमानं च ॥ ३ ॥
- गाथा ७१ क्रोधोत्पत्तेः पुनः वहिरङ्गं यदि भवेत् साक्षात् ।  
न करोति किञ्चिदपि क्रोधं तस्य क्षमा भवति धर्म इति ॥४॥
- गाथा ७२ कुलरूपजातिबुद्धिषु तपश्रुतशीलेषु गर्वं किञ्चित् ।  
यो नैव करोति श्रमणो मार्दवधर्मो भवेत् तस्य ॥ ५ ॥
- गाथा ७३ मुक्त्वा कुटिलभावं निर्मलहृदयेन चरति यः श्रमणः ।  
आर्जवधर्मः तृतीयः तस्य तु संभवति नियमेन ॥ ६ ॥
- गाथा ७४ परसन्तापकरारणवचनं मुक्त्वा स्वपर-हितवचनम् ।  
यो वदति भिक्षु तुरीयः तस्य तु धर्मः भवेत् सत्यम् ॥ ७ ॥
- गाथा ७७ विषयरूपायविनिग्रहभावं कृत्वा ध्यानस्थाध्यायेन ।  
यो भावयत्यात्मानं तस्य तपः भवति नियमेन ॥ ८ ॥
- गाथा ७९ भूत्वा च निरसङ्गो निजभावं निगृह्य सुखदुःखदम् ।  
निर्द्वन्द्वेन तु वर्ततेऽनगारः तस्याऽऽस्त्रिन्यम् ॥ ९ ॥
- गाथा ८० सर्वाङ्गं पश्यन् स्त्रीणां तासु मुञ्चति दुर्भायम् ।  
स ब्रह्मचर्यभावं सुकृती यत्नं दुर्दरं धरति ॥ १० ॥

- गाथा ३० पुत्तकलत्तणिमित्त अत्थं अज्जयदि पाप्पबुद्धीए ।  
परिहरदि दयादाणं सो जीरो भमदि ससारे ॥१॥
- गाथा ३१ मम पुत्तं मम भज्जा मम धणधणोत्ति तिक्कखाए ।  
चइक्कण धम्मवुद्धि पच्छा परिपडदि दीहसंसारे ॥२॥
- गाथा ३६ सजोगविप्पजोगं लाहालाहं सुहं च दुक्ख च ।  
संसारे भूदाणं होदि हु माण तहावमाणं च ॥३॥
- गाथा ७१ कोहुप्पत्तिस्स पुणो बहिरंग जदि ह्वेदि सक्खाद ।  
णकुणदि किंचि पि कोहो तस्स समा होदि धम्मोत्ति ॥४॥
- गाथा ७२ कुळ्ळजादिवुद्धिसु तवमुदसीलेसु गारवं किंचि ।  
जो ण पि कुञ्चदि समणो मद्दवधम्मं ह्वे तस्स ॥५॥
- गाथा ७३ मोत्तूण कुडिलभाव णिम्मलहिदयेण चरदि जो समणो ।  
अज्जपधम्म तइयो तस्स दु संभरदि णियमेण ॥६॥
- गाथा ७४ परसंतावयकारणवयणं मोत्तूण सत्तरहिदवयणं ।  
जो वददि भिक्खु तुरियो तस्स दु धम्मो ह्वे सच्चं ॥७॥
- गाथा ७७ विसयकमायत्रिणिग्गहभावं काउण्ण ज्ञाणसज्जाए ।  
जो भावद्द अप्पाणं तस्स तं होदि णियमेण ॥८॥
- गाथा ७९ होउण्ण य णिस्संगो णियभाय णिग्गट्ठिच्चु मुद्ददुद्दं ।  
णिददेण दु वट्टदि अणयारो तस्य किंचण्हं ॥९॥
- गाथा ८० सत्तवगं पेच्छती इत्थीण तासु सुयदि दुक्खायं ।  
सो बन्नवेरभावं सुक्कादि श्लु दुद्धरं परदि ॥१०॥

## ( संस्कृतच्छाया )

- गाथा ४ यत् किञ्चिदत्युत्पन्नं तस्य विनाशो भवति नियमेन ।  
परिणामस्वरूपेणापि न च किञ्चिदपि शाश्वतमस्ति ॥१॥
- गाथा ५ जन्म मरणेन समं संपद्यते यौवनं जरासहितम् ।  
लक्ष्मीर्विनाशसहिता इति सर्वं भङ्गुरं जानीहि ॥२॥
- गाथा ६ अस्थिरं परिजनस्वजनं पुत्रफलत्रं सुमित्रलवण्यम् ।  
गृहगोधनादि सर्वं नवघनवृन्देन सदृशम् ॥३॥
- गाथा ७ सुरधनुस्तडिद्वत् चपला इन्द्रियविपयाः सुभृत्यवर्गाश्च ।  
दृष्टप्रनष्टाः सर्वे तुरगगजाः रथवरादयश्च ॥४॥
- गाथा ८ पथि पथिकजनानां यथा संयोगो भवति क्षणमात्रम् ।  
बन्धुजनानां च तथा संयोगोऽध्रुवो भवति ॥५॥
- गाथा ९ अतिलालिनोऽपि देहः स्नानसुगन्धैः विविधभक्षैः ।  
क्षणमात्रेणापि विघटते जलभृत आमघट इव ॥६॥
- गाथा १० या शश्वता न लक्ष्मीः चक्रधराणामपि पुण्यवताम् ।  
सा किं बध्नाति रतिमितरजनातामपुण्यानाम् ॥७॥
- गाथा ११ कुत्रापि न रमते लक्ष्मीः कुलीनवीरेऽपि पण्डिते शूरे ।  
पूज्ये धर्मिष्ठेऽपि च सुवृत्तसुजने महासत्त्वे ॥८॥
- गाथा १२ तावद् भुज्यतां लक्ष्मीः दीयतां दानं दयाप्रधानेन ।  
या जलतरङ्गचपला द्वित्रिदिनानि तिष्ठति ॥९॥
- गाथा १३ यो पुनर्लक्ष्मीं संचिनोति न च भुङ्क्ते नैव ददाति पात्रेषु ।  
स आत्मानं बध्नुयति मनुजत्वं निष्फलं तस्य ॥१०॥
- गाथा १४ यः संचित्य लक्ष्मीं धरणितले संस्थापयत्यतिदूरे ।  
स पुर्यः तां लक्ष्मीं पापाणसमानिकां करोति ॥११॥
- गाथा १५ अनवरतं यः संचिनोति लक्ष्मीं न च ददाति नैव भुङ्क्ते ।  
आत्मीयापि च लक्ष्मीः परलक्ष्मीसमानिका तस्य ॥१२॥



२४. अनित्यानुप्रेक्षा

- गाथा ४    जं किंचि वि उप्पणं तस्स विणासो ह्वेइ णियमेण ।  
परिणाम-सरूवेण वि ण य किंचि वि सासयं अत्थि ॥१॥
- गाथा ५    जम्मं मरणेण समं संपज्जइ चोव्वणं जरा-सहियं ।  
लच्छी विणास-सहिया इय सव्वं भंगुरं मुणह ॥२॥
- गाथा ६    अथिरं परियण-सयणं पुत्त-कलत्तं सुमित्त-लावणं ।  
गिह-गोहणाइ सव्वं णव-घण-विंदेण सारिच्छं ॥३॥
- गाथा ७    सुरघणु-तट्टिञ्च चवला इंदिय-विसया सुभिच्च-वग्गा य ।  
दिट्ट-पणट्ठा सञ्जे तुरय-गया रह्वरादी य ॥४॥
- गाथा ८    पंधे पहिय-ज्जाणं जह संजोओ ह्वेइ खणमित्तं ।  
वधु-ज्जाणं च तहा संजोओ अद्दुओ होइ ॥५॥
- गाथा ९    अइलालिओ वि देहो ण्हाण-सुयंवेहि विविह-भक्खेहि ।  
खणमित्तेण वि विहइइ जल-भरिओ आम-घडओ व्व ॥६॥
- गाथा १०    जा सासया ण लच्छी चक्कहराणं पि पुण्णवंताणं ।  
सा कि वंधेइ रइं इयर-ज्जाणं अपुण्णाणं ॥७॥
- गाथा ११    कत्थ वि ण रमइ लच्छी कुन्नीण-धीरे पि पंठिए सूरे ।  
पुज्जे घम्मिट्ठे पि य सुवत्त-सुयणे महासत्ते ॥८॥
- गाथा १२    ता मुंजिज्जउ लच्छी दिज्जउ दाणं दया-पहाणेण ।  
जा जल-तरंग-चवला दो तिण्णि दिणाइ चिट्ठेइ ॥९॥
- गाथा १३    लो पुण लच्छि सच्चि ण य मुंजदि णेय देदि पत्तेनु ।  
सो अप्पाणं वंचदि मणुयत्तं णिप्फळं तम्म ॥१०॥
- गाथा १४    लो सच्चिअण लच्छि परणियत्ते संटोदि अइदूरे ।  
सो पुरिसो तं लच्छि पादाण-मन्नाणियं कुणदि ॥११॥
- गाथा १५    अणवरयं लो संचदि लच्छि ण य देदि णेय मुंजेदि ।  
अप्पणिया वि य लच्छी पर-लच्छि-समाणिया तस्स ॥१२॥

स्वामी कुमार ( १०-११ वीं शताब्दी ) द्वारा रचित—कलियेनानुप्रेक्षा  
( काठिन्यानुप्रेक्षा ) ( श्री मेदिनाथ तथा आदिकाय जनाभ्ये द्वारा सम्पादित तथा  
श्री रायजी शर्मा देसाई अणाय द्वारा १९९० में प्रकाशित ) से उद्धृत ।

## ( सस्कृतच्छाया )

- गाथा ४२६ धर्मं न जानाति जीवोऽथवा जानाति कथमपि वष्टेन ।  
कर्तुं ततोऽपि न शक्नोति मोहपिशाचेन भ्रामित ॥
- गाथा ४२७ यथा जीव करोति रति पुत्रकलत्रेषु कामभोगेषु ।  
तथा यदि जिनेन्द्रधर्मं तल्लीलया सुख लभते ॥
- गाथा ४२८ लक्ष्मीं वाञ्छति नरो नैव सुधर्मेषु आदर करोति ।  
वीजेन विना कुत्रापि किं दृश्यते सत्यनिष्पत्ति ॥
- गाथा ४२९ यो धर्मस्थो जीव स रिपुवर्गेऽपि करोति क्षमाभावम् ।  
तावत् परद्रव्य वर्जयति जननीसम गणयति परदारान् ॥
- गाथा ४३० तावत् सर्वत्रापि कीर्तिं तावत् सर्वत्रापि भवति विश्वास ।  
तावत् सर्वं प्रिय भापते तावत् शुद्ध मानस करोति ॥
- गाथा ४३१ उत्तमधर्मेण युत भवति तिर्यग्पि उत्तमो देव ।  
चण्डालोऽपि सुरेन्द्र उत्तमधर्मेण सभवति ॥
- गाथा ४३२ अग्निरपि च भवति हिम भवति भुजङ्गोऽपि उत्तम रत्नम् ।  
जीवस्य सुधर्माद् देवा अपि च किङ्करा भवन्ति ॥
- गाथा ४३३ तीक्ष्ण रङ्ग माला दुर्जरिपव सुखकरा सुजना ।  
हालाहलमप्यमृत महापदा सम्पदा भवति ॥
- गाथा ४३४ अलीखचनमपि सत्य उद्यमरहितेऽपि लक्ष्मीसप्राप्ति ।  
धर्मप्रभावेण नरोऽनयोऽपि सुखरुरो भवति ॥
- गाथा ४३५ देवोऽपि धर्मत्यक्तो मिथ्यात्ववशेन तरुरुरो भवति ।  
चक्री अपि धर्मरहितो निपतति नरके न सन्देह ॥
- गाथा ४३६ धर्मविहीनो जीव करोत्यशक्यमपि साहस यद्यपि ।  
तत्रापि गप्नोति इष्ट सुष्ठु अनिष्ट पर लभते ॥
- गाथा ४३७ इति प्रत्यक्ष पश्यत धर्माधर्मयो विविधमाहात्म्यम् ।  
धर्म आचरत सदा पाप दूरेण परिहरत ॥

२५. धर्म-माहात्म्यम्

- गाथा ४२६ धम्म ण मुणदि जीवो अहवा जाणेइ कह व कट्टेण ।  
काउ तो वि ण सरुदि मोहपिसाएण भोलविदो ॥१॥
- गाथा ४२७ जह जीवो कुणइ रइ पुत्त-कलत्तेसु काम भोगेसु ।  
तह जइ निर्णिद धम्मे तो लीलाए सुह ल्हदि ॥२॥
- गाथा ४२८ लच्छि वळेइ णरो णेव सुधम्मेसु आयर कुणइ ।  
वोएण विणा कत्थ वि किं दीसदि सस्त-णिप्पत्ति ॥३॥
- गाथा ४२९ जो धम्मत्थो जीवो सो रिउ वग्गे वि कुणइ खम भाव ।  
ता पर-दव्व वज्जइ जणणि-समं गणइ पर-दारं ॥४॥
- गाथा ४३० ता सब्वत्थ वि फिची ता सज्जत्थ वि हवेइ वीसासो ।  
ता सब्व पिय भासइ ता सुद्ध माणसं कुणइ ॥५॥
- गाथा ४३१ उत्तम धम्मेण जुदो होदि तिरिक्खो वि उत्तमो देवो ।  
चंडालो वि सुरिंदो उत्तम धम्मेण सभरदि ॥६॥
- गाथा ४३२ अग्गो वि य होदि हिम होदि भुयगो वि उत्तम रयण ।  
जीवस्स सुधम्मादो देवा वि य किंकरा होंति ॥७॥
- गाथा ४३३ त्तिरत्तं खग्ग माला दुज्जय-रिउणो सुटंकरा सुयणा ।  
हालाहल पि अमिय महावया संपया होदि ॥८॥
- गाथा ४३४ अल्लिय वयण पि सच्च उज्जम रहिए वि लच्छि-सपत्ती ।  
धम्म पहावेण णरो अणओ वि सुटकरो होदि ॥९॥
- गाथा ४३५ देवो वि धम्मचत्तो मिच्छत्त-वमेण तरुवरो होदि ।  
चकी वि धम्म-रहिओ णिवटइ णरए ण सदेहो ॥१०॥
- गाथा ४३६ धम्म विट्ठणो जीवो कुणइ असक्क पि साहस जइ वि ।  
तो ण वि पावदि इट्टं सुट्टं अणिट्ट परं ल्हदि ॥११॥
- गाथा ४३७ इय पच्चन्मं पेच्छट्ट धम्माट्ठमाण त्रिविह माहप्प ।  
धर्म आयरह सया पाव दूरेण परिहरह ॥१२॥

## जैन-महाराष्ट्री प्राकृत

### प्रमुख विशेषताएँ

(१) अनादि असंयुक्त क, ग, आदि व्यञ्जनों का लोप हो जाता है । यदि लुप्त व्यञ्जनों के अन्तर अ या आ हो तो यश्चुति होती है ।

राजधूता = रायधूया, निपतिता = निपडिया, वचनम् = वयणं, भगवती = भयवई ।

(२) कुब्ज स्थलों पर अनादि असंयुक्त क लुप्त न होकर अर्धमागधी प्राकृत की भाँति ग में परिवर्तित हो जाता है ।

एकाकिनी = एगागिणी, आकृति = आगिई, शोक = सोगो, अनुकरोति = अणुगरेइ ।

(३) शब्द के प्रारम्भ में स्थित न तथा मध्य में स्थित न्न प्रायः अपरिवर्तित रहता है ।

मुनिकुमारेण = मुणिकुमारेण, नाभि = नाही, दर्शनम् = दंसण, अन्यथा = अण्णहा, विपन्न = विवन्नो ।

१ श्वेताम्बर जैनों के आगमेतर प्राकृत-ग्रन्थों की भाषा में महाराष्ट्री प्राकृत के साथ साथ यत्र तत्र अर्धमागधी प्राकृत के भी प्रयोग दृष्टिगोचर होते हैं । इसलिए इसे "जैन महाराष्ट्री"—नामक सजा दी गई है । यह नाम सुविधा की दृष्टि से पाश्चात्य विद्वानों द्वारा रखा गया है । कालान्तर में यही भाषा अर्धमागधी प्राकृत के प्रभाव से मुक्त होकर महाराष्ट्री प्राकृत के रूप में हमारे सामने आई । अतः जैन महाराष्ट्री प्राकृत को हम महाराष्ट्री प्राकृत का प्रारम्भिक रूप कह सकते हैं । हेमचन्द्र कृत प्राकृत व्याकरण में लुप्त व्यञ्जनों के स्थान पर केवल अ या आ परे रहते यश्चुति एव शब्द के प्रारम्भिक न को वैकल्पिक ण आदेश का विधान इस बात का सबैत है कि हेमचन्द्र जैनमहाराष्ट्री को भी उस भाषा के अन्तर्गत मानते थे जिसे उन्होंने सामान्य प्राकृत नाम से कहा है ।

(४) शब्दरूप तथा धातुरूप भी प्राकृत के सामान्य नियमों के अनुसार चलते हैं किन्तु कहीं कहीं अर्धमागधी के प्रयोग भी मिलते हैं। जैसे तृतीया विभक्ति के एकवचन में मणसा, वयसा, कायसा आदि शब्दरूप एवं वर्तमानकाल प्रथमपुरुष एकवचन में कुण्डइ, आइक्खइ आदि धातुरूप।

(५) कहीं कहीं समस्तपद में उत्तरपद के पूर्व अनुस्वार (म्) का आगम हो जाता है। जैसे -निरयगामी = निरयंगामी।

(६) अर्धमागधी की तरह कहीं कहीं यथा के स्थान पर जहा एवं जहा तथा यान् के स्थान पर जाव एवं आन आदेश होते हैं।

(७) अर्धमागधी की तरह क्त्वा के स्थान पर कहीं कहीं इत्ता आदेश भी हो जाता है। वन्दित्ता = वन्दित्ता, आर्द्रयित्ता = उल्लेत्ता।

( संस्कृतच्छाया )

इतश्च सा राजदुहिता 'कुत्र आर्यपुत्रः' इति गवेपयन्ती निपतिता कान्तारमध्ये । मूढा दिशः । अप्रेक्षमाणा दयितं भ्रान्ता महादृष्याम् । परिणतप्राये वासरे समागता गिरिनदीम् । न दृष्ट आर्यपुत्र इति विपण्णा हृदयेन । चिन्तितं च तथा । अलं मे आर्यपुत्रविरहिताया जीवितेन । तत एतस्मिन्नशोकपादपे उद्गन्ध्वे आत्मानमिति । निबद्धो वल्ल्या पाशः । न्यस्ता शिरोधरा । भणितं च तथा—भगवत्यो यनदेवताः, न मया आर्यपुत्रं मुक्त्वा अन्यो मनसापि चिन्तितः । अनेन सत्येन जन्मान्तरेऽपि आर्यपुत्र एव भर्ता भवेदिति कृतं निदानम् । प्रवाहितं आत्मा, द्रुष्टितस्तस्याः पाशः, निपतिता धरणीपृष्ठे, गता मूर्छाम् । दृष्टाऽऽसन्नतपोवनवासिना संध्योपासननिमित्तमागतेन मुनिकुमारकेन । चिन्तितं च तेन—हा का पुनरेषा यनदेवतेव स्त्री निपतिता धरणीपृष्ठे । अथवा किं मम स्त्रिया । अन्यतो गच्छामि । वारितं खलु समये स्त्रीदर्शनम् । भणितं च तत्र—अपि चाञ्जितव्यानि तप्तलोहशलाकयाऽस्त्रीणि, न द्रष्टव्या च अङ्गप्रत्यङ्गसंस्थानेन स्त्री, अपि च भक्षितव्यं विषम्, न सेवितव्या विषयाः, छेत्तव्या जिह्वा, न जल्पितव्यमलीकमिति । ततः किं ममानया, अनधिकारश्चैष मुनिजनस्य । अथवा दीनजनाभ्युद्धरणमपि समशत्रुमित्रतया प्रतिपादितमेव । भणितं च तत्र । आत्मनिर्विशेषं द्रष्टव्या सर्वप्राणिनः, प्रवर्तितव्यं हिते यथाशक्ति, अभ्युद्धर्तव्या दीनाः, न खल्वहिंसातोऽन्यद् धर्मसाधनमिति । दीना चैषा । अन्यथा कुत्रारण्यम्, कुत्रैकाकिनी स्त्री । ततः प्रेक्षे तावन् का पुनरेषा, मा नाम विद्याधरी प्रसुप्ता भवेत् । दृष्टा मुनिकुमारेण । दृष्टस्तस्याः पाशः । विपण्णो मुनिकुमारः । चिन्तितं च तेन—अहो एषाऽऽकृतिः, एष च पाश इति विरुद्धमेतत् । अथवा नास्ति कर्मपरिणत्या विरुद्धमिति ।

## २६. पतिविरहिता राजदुहिता'

इओ य रायधूया 'कहिं अज्जउत्त' ति गवेसमाणी नित्रडिया कन्तारमज्जे । मूढाओ दिसाओ । अपेच्छमाणी दइयय भमिया महाडवीए । परिणयप्पाए वासरे समागया गिरिनइ । न दिट्ठो अज्जउत्तो ति विसण्णा हियएण । चिन्तिय च णाए । अल मे अज्जउत्तत्रिरहियाए जीविण । ता एयमि असोअपायवे उक्कलम्भेमि अत्ताणयं । निवद्धो वल्लीए पासओ । निमिया सिरोहरा । भणिय च णाए । भयगईओ वणदेवयाओ, न मए अज्जउत्त मोत्तूण अन्नो मणसा वि चिन्तिओ । इमिणा सच्चेण जम्मन्तरमि ति अज्जउत्तो चैव भत्ता हवेज्ज ति कय नियाण । पगाहिओ अप्पा, तुट्ठो से पासओ, नित्रडिया घरणिवट्ठे, गया मुच्छ । दिट्ठा आसन्नतपोवणवासिणा सक्षोवासणनिमित्तमागएण मुणिकुमारएण । चिन्तिय च णेण । हा का उण एसा वणदेवया विव इत्थिया नित्रडिया घरणिवट्ठे । अहवा किं मम इत्थियाए । अन्नओ गच्छामि । वारिय खु समए इत्थियादसण । भणिय च तत्थ । अवि य अञ्जियञ्वाइ तत्तलोहसलायाए अच्छीणि, न दट्ठव्वा य अङ्गपच्चङ्गसठाणेण इत्थिया, अवि य भन्निखयव्व विस, न सेवियव्वा विसया, ट्ठिन्दियव्वा जीहा, न जपियव्वमलियं ति । ता किं मम इमोए, अणहियारो य एसो मुणिजणस्स । अहवा दीणजणअव्भुद्धरणं पि समसत्तुमित्थाए पडिगाइयमेव । भणिय च तत्थ । अत्ताणनिव्विसेस दट्ठव्वा सवपाणिणो, पवत्तियव्व हिए जहासत्तीए, अव्भुद्धरेयन्ना दीणया, न खल्ल अहिंसाओ अन्न धम्मसाहण ति । दीणा य एत्ता । अन्नहा कहिं रण्ण, कहिं एगागिणी इत्थिया । ता पेच्छामि ताव, का उण एसा, मा नाम विज्जाहरी पसुत्ता भवे । पुलइया मुनिकुमारेण । दिट्ठो से पासओ । विसण्णो मुणिकुमारो । चिन्तिय च णेण । अहो एसा आगिई एसो य पासओ ति विरुद्धमेय । अहवा नत्थि कम्मपरिणईए विरुद्ध ति ।

१. श्री हरिभद्रसूरि ( ७०० ७७० ई० ) विरचिता-समराइचव्वहा ( भगवानदास द्वारा सशोधित तथा हीरानाल द्वारा चारदा मुद्रणालय अहमदाबाद से १९४२ में प्रकाशित ) के द्वितीय भाग ( सामभव पृ० ६६२-६६४ ) से उद्धृत ।

## ( सस्कृतच्छाया )

भणिता च तेन—आर्ये । मा रुदिहि । ईदृश एष ससार, विचित्रतया कर्मपरिणामस्यानुकरोति नटपेटम् । क्षणेन वियोग, तेनैव सगम, क्षणेन शोक तेनैव प्रमोद, क्षणेनापद्, तेनैव संपदिति । एवंविधे चैतस्मिन् युद्धिमता सत्त्वेन आपतितेऽपि विषमदशाविभागे न सेधितव्यो विपाद्, न कर्त्तव्यमनुचितम्, न मोक्तव्यं सत्त्वम्, न उज्ज्वलव्य उत्साह । एवं च वर्तमान सत्त्व पुरुषकारजेयं कर्म क्षपयित्वा लङ्घयत्यापदम् । तत आर्ये । मुञ्च विपादम् । पुनरपि च करुणाप्रपन्नचित्तेन 'कालोचितमिदम्' इति विशेषतो निरूप्य भणित मुनिकुमारकेन । अन्यच्च, लक्ष्मणतोऽत्रगच्छामि, न विपन्नस्ते भर्ता, यत शुभफलोदय आभोग, वननावदाता देहच्छवि, परभृतालपित-मनोहर शब्द सुप्रतिष्ठितौ चरणौ, विजट नितम्बफलकम्, दक्षिणावर्त-संगता नाभि, अम्बलानमान्तिशोभौ करौ, सम्पूर्णकलामृगाङ्क इव परिमण्डल पदनरुमलम्, मधुगुलिकासदृशे लोचने, सुप्रतिष्ठितसिन्धु-तिलकभूपिन ललाट, श्लक्ष्णकृष्णकुटिला शिरोरूहा । तथा एत-विधैर्लक्षणैर्न नारी वैधव्यदुःखमनुभवति, पुत्रभागिनी च भवतीति । तत एहि वत्से । कुलपति वन्दस्वेति । ततो 'यद् भगवान् आह्लापयति' इति भणित्वा गता तपोवनम् । वन्दित कुलपति, अभिनन्दिता च तेन । कथितो व्यतिकरो मुनिकुमारकेन । समाश्वासिता कुलपतिना, भणिता च तेन । वत्से न सततव्यम् । ज्ञानतोऽवगच्छामि, स्तोत्रदि-वसैरेवात्र तपोवने भविष्यति ते समागम प्रियतमेनेति । ततो 'नान्यथा ऋषिवचनम्' इति प्रतिश्रुतमनया । समर्पिता तापसीनां कुलपतिना ।



२७. समाश्वासिता राजदुहिता<sup>१</sup>

भणिया य णेण । अज्जे, मा रूय । ईइसो एस संसारो,  
 विचित्तयाए कम्मपरिणामस्स अणुगरेइ नहपेडयं । खणेण विओगो,  
 तेणेव संगमो; खणेण सोगो, तेणेव पमोओ; खणेण आवया, तेणेव  
 संपय ति । एवविहे य एयंमि बुद्धिमन्तेण सत्तेण आवडिए वि विसमदसा-  
 विभाए न सेवियव्वो विसाओ, न कायव्वमणुचियं, न मोत्तव्वं सत्तं, न  
 उच्चियव्वो उच्छाहो । एयं च वट्टमाणो सत्तो पुरिसयारजेयं कम्मं  
 खण्डणं लद्धेइ आवयं । ता अज्जे मुञ्च विसायं । पुणो वि य  
 कल्याणवन्नचित्तेण 'कालोचियमिणं' ति विसेसओ निह्वविऊण भणियं  
 मुणिकुमारएणं । अन्नं च । लवखणओ अवगच्छामि, न विवन्नो ते भत्ता,  
 जओ सुहफलोदओ आमोगो कणगावदाया देहच्छवी, परहुयालवियमणहरो  
 सद्दो, सुपइट्टिया चल्णा, विथडं नियम्बफल्यं, दाहिणावत्तसंगया नाही,  
 अमिलणकन्तिसोहा करा, संपुण्णकलामियंको व्व परिमण्डलं वयणकमलं,  
 महुगुल्लियासरिसाई लोयणाई, सुपइट्टियनिद्धतिलयभूसियं निडालं, सिहिण-  
 किण्हकुडिला सिरोरुहा । ता एवंविहेहि लवखणेहि न नारी वेहव्व-  
 दुक्खमणुहवइ, पुत्तभाइणी य होइ ति । ता एहि वच्छे, कुलवइं वन्दसु  
 ति । तओ 'जं भयवं आणवेइ' ति भणिऊण गया तवोवणं । वन्दिओ  
 कुलवई, अहिणन्दिया य णेण । साहिओ वइयोरो मुणिकुमारएण ।  
 समासासिया कुलवइणा, भणिया य णेणं । वच्छे न संतप्पियव्वं ।  
 नाणओ अवगच्छामि थेवदियहेहिं चेव एत्थं तवोवणे भविस्सइ ते  
 समागमो पिययमेणं ति । तओ 'न अन्नहा रिसिवयणं' ति पडिस्सु-  
 यमिमीए । समप्पिया तावसीणं कुलवइणा ।

( सस्कृतच्छाया )

गजशङ्खलक्ष्मीकलितं विष्णुतनूरिव सुदर्शनाधारम् ।  
सुधिराजितं वरै रत्नै रत्नपुरनगरम् ॥ १ ॥

तत्रारित वणिक्प्रधान सुधन श्रेष्ठी धनद इव धनफलित ।  
तस्यापि च प्रिया सीता शीलगुणपूर्णमाहात्म्या ॥ २ ॥

अथान्यदा च तयोर्जातस्तनयो गुणाना कुलभवनम् ।  
धनसारो नाम्ना, मित्र तस्यास्ति यणिकसुत ॥ ३ ॥

नाम्ना रूपेण च मदनो धनसारमित्रसहित स ।  
क्रीडति काननादिषु निरङ्कुशो मत्तहस्तीव ॥ ४ ॥

अथान्यदा प्रवृत्ते वसन्तसमये समयसारमुनिम् ।  
पश्यति प्रशान्तमूर्त्तिमुद्याने दुसुमसारे ॥ ५ ॥

त दृष्ट्वा प्रभणति मदनो, धनसार । शारदशशिनमिव ।  
मनोनयनानन्दकर वन्दावहे मुनिवरमेतम् ॥ ६ ॥

इति भणित्वा वन्दित स ध्यान सहस्रत्य धर्मलाभेन ।  
अभिनन्दितावनेन द्विजेनैकेन ततो भणितम् ॥ ७ ॥

किं भो । मा मुक्त्वैप शूद्रोऽभिवादित एवम् ।  
प्राप्ते । मानससरसि क पिवति सातिकानीरम् ॥ ८ ॥

ततस्ताभ्याः स भणितो ब्राह्मण । मा भणेश वचनम् ।  
ब्राह्मणशब्दार्थयुत किमेव न ब्राह्मणो भवति ॥ ९ ॥

मा जहि मा जहि जीवान् मा भण मा भणतालीकवचनानि ।  
मा धरत परधनानि मा गृध्यत युवतिदेहेषु ॥ १० ॥

मा मूच्छ्रां कुरुत परिग्रह इत्यादि ददात्युपदेशम् ।  
अब्रह्मणो विरतो य खलु त ब्राह्मण ब्रुवन्ति ॥ ११ ॥

तत एवमादिगुणसगतोऽपि कथ सोम । ब्राह्मणो नैप ।  
स एव भवति शूद्रो य खलु पूर्वोक्तगुणविकल ॥ १२ ॥

इति वचनामृतोपशान्तामिताज्ञानरोगसताप ।  
वन्दित्वा द्विज साधु सविनयमवनावुपविष्ट ॥ १३ ॥

२८. ब्राह्मणलक्षणम्<sup>१</sup>

गयसखलच्छक्रलिय विण्हुतणु पिव सुदसणाहार ।  
 सुविराइयं वरेहिं रयणेहिं रयणपुरनयर ॥ १ ॥  
 तत्स्थि वणिप्पहाणो सुधणो सिट्ठी धणो व्व धणकलिओ ।  
 तत्सवि य पिया सीया सीलगुणग्धवियमाहप्पा ॥ २ ॥  
 अह अन्नया य ताण जाओ तणओ गुणाण कुलभवण ।  
 धणसारो नामेण, मिच्चो तत्सत्थि वणियसुओ ॥ ३ ॥  
 नामेण रूवेण य मयणो धणसारमित्तसहिओ सो ।  
 किलेइ काणणाइसु निरकुसो मत्तहत्थि व्व ॥ ४ ॥  
 अह अन्नया पयट्टे वसत्तसमयग्मि समयसारमुण ।  
 पासइ पसत्तमुत्ति उज्जाणे कुसुमसारग्मि ॥ ५ ॥  
 तं दट्ठुण पभणइ मयणो धणसार ! सारयससि व ।  
 मणनयणाणदयर वदेमो मुणिवर एय ॥ ६ ॥  
 इय भणिय वदिओ सो, ज्ञाण सहरिय धम्मलाभेण ।  
 अभिणदिया इमेण दिएण एककेण तो भणिय ॥ ७ ॥  
 किं भो ! म मुत्तण एसो सुद्धोऽभिजाइओ एव ।  
 पत्तग्मि माणससरे को घुटइ खाइयानीर ॥ ८ ॥  
 तो तेहिं सो भणिओ माहण ! मा भणसु एरिस वयण ।  
 माहणसद्दत्थजुओ किं एस न माहणो होइ ॥ ९ ॥  
 मा हण मा हण जीवे मा भण मा भणह अलियवयणाइ ।  
 मा हरह परधणाइ मा गिज्झह जुवइदेहेसु ॥ १० ॥  
 मा मुच्छ कुणह परिग्गहग्मि इच्चाइ देइ उणएस ।  
 अट्ठभाओ विरओ जो खल्ल त माहण विति ॥ ११ ॥  
 तो एवमाइगुणसगओ वि कह सोम ! माहणो नेसो ।  
 सो चेव होइ सुद्धो जो खल्ल पुब्बुत्तगुणवियलो ॥ १२ ॥  
 इय वयणामयउवसमियअमियअन्नाणरोयसतावो ।  
 वदेवि दिओ साहु सविणयमग्णीए उवविट्ठो ॥ १३ ॥

१ श्री लक्ष्मणगणि (११४२ ई०) विरचित—सुवासनाहचरिअं (प० हरगोन्दि सेठ द्वारा सम्पादित तथा बनारस से १९१८ म प्रकाशित) के द्वितीय भाग पृष्ठ ३१० से उद्धृत ।

## ( सस्कृतच्छाया )

अस्त्यवन्तीविषय उज्जयिनी पुरीवरा जगत्प्रसिद्धा ।  
 कुलभूषणश्च श्रेष्ठी तद्धार्या भूषणा नामा ॥ १ ॥  
 तयो सुत सजातो दुर्गो नाम्ना यौवनस्थोऽपि ।  
 वाल एव चेष्टयोन्मत्तो भ्रमति पुरमध्ये ॥ २ ॥  
 दौर्भाग्यकर्मवशतो रमणी मनसापि त न प्रार्थयते ।  
 स्नेहेनाप्यालपिताऽऽक्रोशास्तस्य प्रयच्छति ॥ ३ ॥  
 दौर्भाग्यतर्जितेन पृष्ट कापालिस्ततस्तेन ।  
 तव काप्यस्ति विद्या सौभाग्यकरी विशेषेण ॥ ४ ॥  
 स भणत्यस्ति त्रिपुराविद्या सद्योऽपि ददाति सौभाग्यम् ।  
 या स्मरणमात्रेणापि विधिना ससाधिता सती ॥ ५ ॥  
 ततो भणितं दुर्गेण यद्येवं तदा प्रयच्छ मे विद्याम् ।  
 कृत्वा गुरुप्रसाद तेनापि विधिना वितीर्णा सा ॥ ६ ॥  
 कणधीरकुसुमलक्ष सगुग्गुलु गृहीत्वाऽऽनदा दुर्गं ।  
 त्रिपुराविद्यादेवीप्रसाधनार्थं गतो मलये ॥ ७ ॥  
 तावद्यावत्त्र नृपमन्दिरस्य द्वारे केवली दृष्ट ।  
 देशयन् सुगतिपथ किन्नरनरसुरसमूहस्य ॥ ८ ॥  
 तत स परिचिन्तयति नून सौभाग्यगुणनिधिरेव ।  
 सिद्धत्रिपुरादिविद्य कोऽपि महात्मा महासिद्ध ॥ ९ ॥  
 सातिशयैव विद्यैतस्य कापालिहात् तस्मादेनम् ।  
 प्रार्थये कामपि विद्यामिति हेतोर्वन्दित साधु ॥ १० ॥  
 तेनापि धर्मलाभो दत्त सभापितञ्चोपविष्ट ।  
 मुनिनापि समारब्धा धर्मकथा तमप्युद्दिश्य ॥ ११ ॥

२९ दुर्गं प्रति मृनेरूपदेशः<sup>१</sup>

अत्थि अवतीविसए उज्जेणी पुरवरी जयपसिद्धा ।  
 कुलमूसणो य सिट्ठी तड्मज्जा भूसणा नामा ॥१॥  
 ताण मुओ सजाओ दुग्गो नामेण बोब्बणत्थो वि ।  
 बालो च्चिय चिट्ठाए उम्मत्तो भमइ पुरमज्जे ॥२॥  
 दोहग्गकम्मवसओ रमणी मणसा वि त न पत्थेइ ।  
 नेहेण वि आलविया अक्कोसे से पयच्छेइ ॥३॥  
 दोहग्गतज्जिण्ण पुट्ठो कावालियो तओ तेण ।  
 तुह कावि अत्थि विज्जा सोहग्गकरी विसेसेण ॥४॥  
 सो भणइ अत्थि तिपुराविज्जा सज्जो वि देइ सोहग्ग ।  
 जा सुमरणमित्तेण वि विट्ठिणा ससाहिया सती ॥५॥  
 तौ भणिय दुग्गेण जइ एव ता पयच्छ मे विज्ज ।  
 काऊण गुरुपसाय तेण वि विट्ठिणा विइत्ता सा ॥६॥  
 कणवीरकुसुमलक्ख सगुग्गुल गहिवि अन्नया दुग्गो ।  
 तिपुराविज्जादेवीपसाहणत्थ गओ मलए ॥७॥  
 ता जाव तत्थ निम्मन्दिरस्स दारम्मि केवली दिट्ठो ।  
 देसतो सुगइपह किंनरनरसुरसमूहस्स ॥८॥  
 तत्तो सो परिचित्तइ नूण सोहग्गगुणनिही एसो ।  
 सिद्धतिपुराइविज्जो को वि महप्पा महासिद्धो ॥९॥  
 साइसय च्चिय विज्जा एयस्स कावालियाउ, ता एय ।  
 पत्थेमि किं पि विज्ज इय हेऊ वदिओ साहू ॥१०॥  
 तेणावि धम्मलाभो दिन्नो सभासिओ य उवविट्ठो ।  
 मुणिणावि समारद्धा धम्मकटा त पि उदिसिउ ॥११॥

१ श्री लक्ष्मणगणिविरचित सुपाशनाहचरित्र, द्वितीय भाग पृष्ठ ३६६-६८ से उद्धृत ।

कामं कामासक्तो विद्यामन्त्रैश्चूर्णयोगैः ।  
 रमणीर्मोहयित्वा यो भुङ्क्ते स च कालेन ॥१२॥  
 न च मुञ्चति परदारान् गम्यागम्यां च न त्यजति कदापि ।  
 इह जन्मन्यपि प्राप्नोति पापमततस्तीक्ष्णदुःखानि ॥१३॥  
 अधिकं तथा दौर्भाग्यं भवत्यनिष्टञ्च सर्वलोकस्य ।  
 दौर्भाग्यदुःखनटितः स भ्रमति भीमभवगहने ॥१४॥  
 न्यायागता अपि भोगा भयवहा. कर्मबन्धहेतवश्च ।  
 किं पुनरुन्मार्गगता समर्गलं गलितगुणगरिमाण ॥१५॥  
 इतरस्तनुरपि गुणो मा भवतु, भवतु केवलं शीलम् ।  
 यो जीवानां मनोवाञ्छितानि कार्याणि पूरयति ॥१६॥  
 यशोविभवहानिपरिभवफलङ्कदुःखप्रमुखदोषद्वन्द्वाली ।  
 शीलविकलानां पुरुषाधमानां नूनं समापतति ॥१७॥  
 पञ्चैते महापापा भणिता सर्वज्ञेनेह ।  
 येभ्यः प्राप्नुवन्ति दुःखानि पापबुद्धयो नराधमाः ॥१८॥  
 भूतहिंसा मृषावादश्चोरिका मैथुनं तथा ।  
 परिग्रहो महारम्भो महाशब्दार्हा इमे ॥१९॥  
 इत्यादिदेशनां श्रुत्वा सवेगमागता परिपत् ।  
 दुर्गोऽपि भणति भगवन् । पञ्चमहापापपरिहारः ॥२०॥  
 कर्त्तव्यस्तस्मात्संप्रति नियमं मे देहि, ज्ञानिना दत्त ।  
 सम्यक्त्वपूर्वकं स नत्वा मुनिं गतो मोहे ॥२१॥

कामं कामासत्तो विज्जामंतेहिं चुन्नजोगेहिं ।  
 रमणीउ मोहिऊणं जो भुंजइ सो य कालेण ॥१२॥  
 न य मुंचइ परदारं गम्मागम्मं च न चयइ कयावि ।  
 इह जन्ममि वि पावइ पावो तो तिस्खदुक्खाइं ॥१३॥  
 अहियं तह दोहग्ग होइ अणिट्ठो य सन्वलोयस्स ।  
 दोहग्गदुक्खनडिओ सो भमइ भीमभवगहणे ॥१४॥  
 नायागया वि भोगा भयावहा कम्मउघहेऊ य ।  
 किं पुण उम्मगगया समगलं गलियगुणगरिमा ॥१५॥  
 इयरो तणुओ पि गुणो मा होउ, हवेउ केवलं सीलं ।  
 जो जीयाणं मणवंठियाइ कज्जाइं पूरेइ ॥१६॥  
 जसविहवहाणिपरिभवकलं कदुहपमुहदोसदंदोली ।  
 सीलवियलाण पुरिसाहमाण नूणं समावहइ ॥१७॥  
 पच एए महापावा भणिया सन्वन्नुणा इह ।  
 जैसि पावंति दुक्खाइं पाउबुद्धी नराहमा ॥१८॥  
 मूयहिंसा मुसावाओ चोरिया मेहुण तहा ।  
 परिग्गहो महारंभो महासदारिहा इमे ॥१९॥  
 इच्छाइ देसणं निसुणिऊण सवेगमागया परिसा ।  
 दुग्गो वि भगइ भयवं पंचमहापाउपरिहारो ॥२०॥  
 षायन्वो ता संपइ नियमं मे देहि, नाणिणा दिस्सो ।  
 सम्मउपुन्वगं सो नमिऊण सुणि गओ गेहे ॥२१॥

तालव्य वर्ण	Palatal consonant
तृतीया विभक्ति	Instrumental case
दन्त्य वर्ण	Dental consonant
द्वितीया विभक्ति	Accusative case
द्विवचन	Dual number
द्वन्द्व समास	Copulative compound
धातुरूप	Conjugation of verb
नपुंसक लिङ्ग	Neuter gender
पञ्चमी विभक्ति	Ablative case
पुल्लिङ्ग	Masculine gender
प्रथमा विभक्ति	Nominative case
प्रेरणार्थक	Causative
बहुवचन	Plural number
बहुव्रीहि समास	Attributive compound
भूत-कृदन्त	Past Participle
मूर्धन्यवर्ण	Cerebral consonant
लिङ्ग	Gender
लिङ्गानुशासन	Law of grammatical gender
वचन	Number
वर्तमान-कृदन्त	Present participle
वर्तमान काल	Present tense
विध्यर्थक	Optative (Potential)
विभक्ति	Case
विसर्ग	A kind of aspirate denoted by h
व्यञ्जन सन्धि	Combination of consonants
व्यञ्जनान्त	Bases ending in consonant
शच्, शानच् प्रत्यय	Affixes of the Present Par- ticiple
शब्दरूप	Declension of word
षष्ठी विभक्ति	Genitive



संख्या वाचक	Numeral
संयुक्तपरिवर्तन-व्यञ्जन	Change of Compound consonants
सन्धि	Combination of two letters
सप्तमी विभक्ति	Locative
समानीकरण का नियम	Law of Assimilation
समास	Compound
सम्बन्धसूचक-भूतकृदन्त	Prepositional past participle or Indeclinable participle
सम्बोधन	Vocative
सरलव्यञ्जन-परिवर्तन	Change of Single consonant.
सर्वनाम	Pronoun
स्त्रीप्रत्यय	Affix of the Feminine
स्त्रीलिङ्ग	Feminine Gender
स्वरपरिवर्तन	Change of vowel
स्वरभक्ति	Vowel-separation
स्वरसन्धि	Combination of vowels
स्वरान्त	Bases ending in vowel
ह्रस्वयुक्त्यर्ण	Aspirate
हेत्वर्थक	Infinitive

## ( व ) अंग्रेजी-हिन्दी

Ablative Case	षष्ठमी विभक्ति
Accusative Case	द्वितीया विभक्ति
Active Voice	कर्तृवाच्य
Affix of the Feminine	स्त्री प्रत्यय
Affixes of the Present Participle	शर, शानच् प्रत्यय

## परिशिष्ट

### १. पारिभाषिक शब्द

( अ ) हिन्दी-अंग्रेजी

अकारान्त शब्द	a-stem word
आह्वार्थक	Imperative
अनुनासिक	Nasal
अन्तस्थ	Semivowel
अव्यय	<i>Indeclinable</i>
अव्ययीभाव समास	Indeclinable compound or Adverbial compound.
इकारान्त शब्द	i-stem word
उकारान्त शब्द	u-stem word
एक वचन	Singular number
कर्तृवाच्य	Active voice
कर्मवाच्य	Passive voice
कर्मधारय समास	Appositional compound
कारक	Government (of the cases)
कृतप्रत्यय	Primary affix (to form word from root)
क्रियाविपत्ति	Conditional with negative implication
चतुर्थी विभक्ति	Dative
वर, तम प्रत्यय	<i>Terminations of the com- parative and superlative degrees</i>
वत्पुरुष समास	Determinative compound.
वद्धितप्रत्यय	Secondary affix (to form word from word)

A kind of aspirate denoted by h	विसर्ग
Appositional compound	कर्मधारय समास
Aspirate	हकारयुक्त वर्ण
a-stem word	अकारान्त शब्द
Attributive compound	बहुव्रीहि समास,
Bases ending in consonant	व्यञ्जनान्त
Bases ending in vowel	स्वरान्त
Case	विभक्ति
Causative	प्रेरणार्थक
Cerebral consonant	मूर्धन्य वर्ण
Change of compound consonant	सयुक्तव्यञ्जन-परिवर्तन
Change of single consonant	सरलव्यञ्जन परिवर्तन
Change of vowel	स्वर परिवर्तन
Compound	समास
Conditional with negative implication	क्रियातिपत्ति
Conjugation of Verb	धातुरूप
Copulative compound	द्वन्द्वसमास
Dative case	चतुर्थी विभक्ति
Declension of word	शब्दरूप
Dental consonant	दन्त्यवर्ण
Determinative compound	तत्पुरुषसमास
Dual number	द्विवचन
Feminine gender	स्त्रीलिङ्ग
Gender	लिङ्ग
Genitive case	पष्ठी विभक्ति
Government (of the cases)	कारक
Imperative	आज्ञार्थक
Indeclinable	अव्यय

Indeclinable compound	अव्ययीभाव समास
Infinitive	हेत्वर्थक
Instrumental case	तृतीया विभक्ति
i-stem word	इकारान्त शब्द
Law of Assimilation	समानोकरण का नियम
Law of grammatical gender	लिङ्गानुशासन
Locative case	सप्तमी
Masculine gender	पुल्लिङ्ग
Nasal	अनुनासिक
Neuter gender	नपुंसकलिङ्ग
Nominative case	प्रथमा विभक्ति
Number	वचन
Numeral	संख्यावाचक
Optative (potential)	विध्यर्थक
Palatal consonant	
Passive voice	कर्मवाच्य
Past participle	भूतकृदन्त
Plural number	बहुवचन
Prepositional Past Participle or Indeclinable Past Participle	सम्बन्धसृचक-भूतकृदन्त
Present tense	वर्तमानकाल
Present Participle	वर्तमान कृदन्त
Primary affix (to form word from root)	शृत्प्रत्यय
Pronoun	सर्वनाम
Secondary affix (to form word from word)	तद्धितप्रत्यय
Semivowel	अन्व स्य
Singular number	एकवचन

Terminations of comparative and superlative degrees	तर, तम प्रत्यय
u-stem word	उकारान्त शब्द
Vocative	सम्बोधन
Vowel separation	स्वरभक्ति

## २. देशी-शब्द

आवुत्त	भगिनीपति (इसे संस्कृत में भी अपना लिया गया है)
कच्छ	वस्त्र
कोट्ट	कौतुरु
कोससदचट्टिणी	सैकड़ों झूठी शपथें खानेवाली स्त्री
चंपिअ	पीड़ित
टेण्टाकराले	छाती के शुष्क ब्रण को विकसित करनेवाली ( एक प्रकार की गाली )
णम	छादय ( छिपाना )
पाडिसिद्धि	प्रतिस्पर्धा
पोट ( पोट्ट )	उदर
भोलविदो	भ्रामित, वञ्चित
वाडहअ	पुत्तलक ( पुतला )
विट्टुरिह	उज्ज्वल
समसीसिआ	स्पर्द्धा
साहुलिआ	शाटिका ( वस्त्र )
हक्क	पुकारना
ही अविद	विपादसूचक अव्यय
वरिह	वस्त्र

## सहायक ग्रन्थों की सूची

- भेज्ञानशाकुन्तलम्—Monier Williams, Oxford, 1876
- सवहो—हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई, १९४०
- त्तगोयाणुप्पेक्खा—रावजी भाई देसाई, अगास, १९६०
- पूर्मञ्जरी—मोतीलाल बनारसीदास नेपाली खपड़ा, वाराणसी, १९६३
- वडवहो—Bhandarkar Oriental Research Institute  
Poona, 1927.
- पाथासप्तशती—प्रसाद प्रकाशन पूना—२, १९५६
- गरुदत्त—अनन्तरायन सस्कृत ग्रन्थावली, १९२२
- नरयावलीओ—Dr P L Vaidya Nowrosjee Wadia  
college, Poona, 1932
- प्राकृतप्रकाश—Edward Byles Cowell, Stephen Austin  
Hertford, 1858
- प्राकृत भाषाओं का व्याकरण—  
विहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना, १९५८
- प्राकृत व्याकरण ( हेमचन्द्र ) सम्पादक—P L Vaidya, Motilal  
Ladhaji, 196, Bhavani Peth Poona city, 1928.
- मृच्छकटिक—Stenzler, Bonnæ, 1817
- रावणवह महाकाव्यम्—Sanskrit College Calcutta, 1954.
- लीलावई-सिंघी जैनशास्त्र शिक्षापीठ, भारतीय विद्याभवन बम्बई—७  
१९४९
- ववागसुर्य—P L Vaidya Nowrosjee Wadia College  
Poona, 1935.
- वेजीसद्वार—Julius Grill, Leipzig, 1871.

# Bhavan's Library, Bombay

N B—This book is issued only for one week till 1/1/66

This book should be returned within a fortnight from the date last marked below .

Date	Date	Date
2-5 MAY-1969		
1-9 MAY-1972		
8 JAN 1983		